ज्ञानावरणीय कर्म

दर्शनावरणीय कर्म

वेदनीय कर्म

दूसरा कर्मग्रन्थ

मोहनीय कर्म

-: विवेचनकार-संपादक :-

पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय

रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

आयुष्य कर्म

अंतराय कर्म

गोत्र कर्म

नाम कर्म

आचार्य श्री देवेन्द्रसूरिजी विरचित

दूसरा-कर्मग्रन्थ

हिन्दी संपादक

परम शासन प्रभावक, महाराष्ट्र देशोद्धारक **स्व. पू. आचार्यदेव**
श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. के
शिष्यरत्न अध्यात्मयोगी, निःस्पृह शिरोमणि भावाचार्य तुल्य
पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य
के चरम शिष्यरत्न प्रभावक प्रवचनकार एवं
जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न **पूज्य आचार्यदेव**
श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

196

卐 **प्रकाशन** 卐

दिव्य सन्देश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor,
बे.व्यु. बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट,
कालबादेवी, मुंबई-400 002.
Cell 8484848451 (only whatsapp)

हिन्दी आवृत्ति : तृतीय • **मूल्य :** 110/- रुपये • **प्रतियाँ :** 1000
दि. 5-6-2024 • **विमोचन स्थल :** आराधना भवन-वीरवाडा (राज.)
. • **Website :** Divyasandesh.online

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 3000/- रु.

• आप जैन धर्म के रहस्य, जैन इतिहास, जैन तत्त्वज्ञान, जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप **दिव्य संदेश प्रकाशन** मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.*** सा. द्वारा लिखित उपलब्ध 7 पुस्तकें दी जाएंगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें (Open Book Exam साधु–साध्वी उपयोगी पुस्तकें एवं पुनः मुद्रित पुस्तकों को छोड़कर) घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
भायंदर (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल,
चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. राहुल वैद
C/o. अरिहंत मेटल कं.,
4403, लोटन जाट गली,
पहाड़ी धीरज, सदर बाजार,
दिल्ली-110 006.
M. 9810353108

4. चंदन एजेन्सी
607, चीरा बाजार,
मुंबई-400 002.M.9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क
Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक

प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

प्रकाशक की कलम से...

विपूल हिन्दी साहित्य सर्जक, **मरुधर रत्न पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा.** द्वारा आलेखित-संपादित **'दूसरा कर्मग्रन्थ'** के हिन्दी विवेचन की तीसरी आवृत्ति प्रकाशित करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है ।

श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ में वर्तमान काल में साधु-साध्वी एवं मुमुक्षुजन के प्राथमिक पाठ्यक्रम के रुप में पंच प्रतिक्रमण, नव स्मरण, चार प्रकरण, तीन भाष्य और छह कर्मग्रंथों का अभ्यास किया जाता है ।

चार प्रकरण आदि सूत्रों के कंठस्थ करने के बाद उसका अर्थ बोध भी जरुरी है ।

गुजराती भाषा में इन सभी पर विस्तृत व संक्षिप्त विवेचन भी उपलब्ध है, परंतु हिन्दी भाषा में इस प्रकार के विवेचनात्मक साहित्य की बहुत बडी कमी रही है । इस कमी की पूर्ति के लिए **मरुभूमि के रत्न पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरिजी म.सा.** अपने संयम जीवन के प्रारंभिकाल से ही प्रयत्नशील है ।

उन्होंने अत्यंत ही सरल-सुबोध और रोचक शैली में पंच प्रतिक्रमण, जीव-विचार, नव तत्त्व, दंडक, लघु संग्रहणी, तीन भाष्य तथा छह कर्म–ग्रंथों पर हिन्दी भाषा में विवेचन तैयार किया है ।

जैन धर्म के प्रारंभिक पाठ्यक्रम के रुप में प्रकाशित साहित्य दक्षिण भारत में खूब व उपकारक बना है ।

हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास हैं कि यह प्रकाशन पाठकों के लिए अति उपयोगी सिद्ध होगा !

-: निवेदक :-

दिव्य संदेश प्रकाशन ट्रस्ट मंडल

विवेचनकार और संपादक की कलम से

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी, अनंत करुणा के स्वामी, जगत्-उद्धारक, तारक तीर्थंकर परमात्मा अपने केवलज्ञान अर्थात् आत्म प्रत्यक्ष पूर्ण ज्ञान के बल से जगत् के यथार्थ स्वरूप को प्रत्यक्ष जानकर आत्म-हितैषी आत्माओं के कल्याण के लिए उसका यथार्थ प्ररुपण भी करते हैं ।

जगत् के जीवों को भ्रमित करानेवाले मोहनीय कर्म का संपूर्ण क्षय हो जाने के कारण वे तारक परमात्मा वीतराग कहलाते है, अतः उन्हें असत्य बोलने का कोई प्रयोजन नहीं रहता हैं ।

सामान्यतया व्यक्ति दो कारणों से झूठ बोलता हैं–

1) अज्ञानता के कारण 2) मोह के कारण ।

जिस वस्तु का पूर्ण ज्ञान नहीं हो और उस वस्तु के संदर्भ में कोई अपना अभिप्राय देगा तो उसमें असत्य कथन की पूरी पूरी संभावना रहती है ।

किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान है, परंतु मन में राग, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, मोह, लोभ या लालच हो तो व्यक्ति झूठ बोल सकता है ।

तारक परमात्मा दीक्षा अंगीकार करने के बाद जब तक वीतराग और सर्वज्ञ नहीं बनते है, तब तक धर्म का उपदेश नहीं देते हैं, अतः इन दोनों कारणों के अभाव में वीतराग-सर्वज्ञ को कहीं असत्य भाषण का नाम मात्र का भी प्रयोजन नहीं होने से उनके द्वारा निरुपित पदार्थों में शंका को स्थान नहीं रहता है ।

परमात्मा ने अपने ज्ञान के बल से देखकर आत्मा के संदर्भ में सुंदर निरुपण किया है । यद्यपि आत्मा अतीन्द्रिय पदार्थ है, फिर भी उसके यथार्थ स्वरुप को जानकर आत्मा के षट्स्थान बताए है–

1) आत्मा है ।

2) आत्मा परिणामी नित्य है अर्थात् आत्मा अन्य अन्य पर्यायों को ग्रहण करते हुए भी मूल द्रव्य से नित्य है ।

3) अरुपी ऐसी **आत्मा भी कर्म की कर्ता है ।** ज्ञानावरणीय आदि शुभ अशुभ कर्मों को बांधने का काम भी आत्मा स्वयं ही करती है ।

4) आत्मा कर्म फल की भोक्ता हैं– अर्थात् आत्मा ने अपने शुभ-अशुभ अध्यवसायों द्वारा जिन कर्मों का बंध किया है उन कर्मों का फल भी वह स्वयं ही भोगती है ।

5) आत्मा का मोक्ष है– यद्यपि प्रवाह की अपेक्षा आत्मा अनादिकाल से कर्म से बद्ध है, फिर भी वह अपने प्रयत्न द्वारा कर्मों के बंधन से सर्वथा मुक्त हो सकती है ।

6) मोक्ष का उपाय है– कर्म के जटिल बंधनों से मुक्त होने के लिए जगत् में सम्यग् दर्शन, ज्ञान और चारित्र रुप मोक्ष मार्ग भी है, जिस मार्ग का अनुसरण कर आज तक अनंत आत्माओं ने शाश्वत-अजरामर मोक्ष पद प्राप्त किया है ।

'आत्मा कर्म की कर्ता है और कर्म फल की भोक्ता हैं' आत्मा के इस स्वरूप के संदर्भ में ही प्रभु ने संपूर्ण **'कर्म विज्ञान'** का निरुपण किया है ।

'आत्मा स्वयं ही कर्म बांधती है और उसका फल भोगती हैं' इस बात को अकाट्य तर्कों द्वारा सिद्ध किया गया हैं, इस सत्य को समझ लेने के बाद **'जगत् कर्ता'** ईश्वर है और ईश्वर ही जीवात्मा को स्वर्ग, नरक, सुख-दु:ख आदि देता है–**'की मिथ्या मान्यता में से व्यक्ति मुक्त हो जाता है ।**

भगवान महावीर के द्वितीय शिष्य **अग्निभूति** के अन्तर्मन में दीक्षा के पूर्व **कर्म हैं या नहीं ?** के संदर्भ में शंकाएं थी-परंतु महावीर प्रभु ने उसका युक्तिपूर्वक समाधान कर जगत् के सामने **'कर्म विज्ञान'** को प्रकाशित किया था । उसके बाद **वायुभूति** आदि के दिल में भी **'जगत् की समुचित व्यवस्था कैसे चल रही है ?'** के संदर्भ में जो भिन्न भिन्न शंकाएं थी-उसका बहुत ही सुंदर समाधान प्रभुवीर ने किया था– उनका यह वार्तालाप आज भी **'गणधरवाद'** के रुप में खूब प्रसिद्ध है ।

यह **गणधरवाद– 'विशेषावश्यक भाष्य'** ग्रंथ में प्राकृत-संस्कृत भाषा में आज भी विद्यमान हैं ।

जिनागमों के आधार पर ही भूतकाल में अनेक आचार्य भगवंतों ने विपूल प्रमाण में **'कर्म साहित्य'** का सर्जन किया है ।

यद्यपि अग्नि-जल-भूकंप आदि अनेक प्राकृतिक आपदाओं के कारण काफी साहित्य नष्ट हो चूका हैं, फिर भी जो बचा है वह भी खूब उपयोगी व महत्त्वपूर्ण हैं ।

वर्तमान में उपलब्ध कर्म साहित्य में प्राकृत भाषा में कम्मपयडी और पंचसंग्रह मुख्य है ।

कम्मपयडी में 475 गाथाएं हैं, जो दूसरे पूर्व में से संग्रहित हैं तो पंच संग्रह में 1000 गाथाएं है, जिसमें योग, उपयोग, कर्मबंध, बंध हेतु, उदय, उदिरणा, सत्ता, बंध आदि आठ करण आदि का सुंदर विवेचन है ।

वर्तमान में प्राचीन और अर्वाचीन छह कर्मग्रंथ मिलते है प्राचीन छह कर्मग्रंथों के आधार पर ही **पू.आ. श्री देवेन्द्रसूरिजी म.** ने पांच कर्मग्रंथों की रचना की है, इनके नाम कमशः कर्म विपाक, कर्मस्तव, बंध-स्वामित्व, षडशीति और शतक हैं। पहले तीन ग्रंथों का नाम अपने विषय के अनुरुप और चौथे-पांचवे कर्मग्रंथ का नाम उनमें निर्दिष्ट गाथा की संख्या के अनुसार है ।

दूसरा कर्मग्रंथः– पहले कर्मग्रंथ में कर्मों के मुख्य भेद उत्तर प्रकृत्तियों की संख्या, उन कर्मों के बंध के हेतु और उन कर्मों के फल का सुंदर निर्देश किया है। प्रस्तुत दूसरे कर्मग्रंथ में गुणस्थानकों के अनुसार कर्म प्रकृतियों के बंध, उदय, उदीरणा और सत्ता का निर्देश किया है।

बंध अधिकार में प्रत्येक गुणस्थानक में रहे जीवों की बंध योग्यता बताई हैं, उसी प्रकार उदय, उदीरणा और सत्ता के अधिकार में उन उन गुणस्थानकों में होने वाले कर्म के उदय आदि को बतलाया गया है ।

प्राचीन कर्मग्रन्थ में 55 गाथाएं हैं, जबकि इसमें 34 ही है, परंतु संक्षेप में उन सब विषयों का इसमें संग्रह कर लिया गया है ।

इन कर्मग्रंथों पर उपलब्ध संस्कृत टीकाओं के आधार पर आज तक गुजराती में महेसाणा पाठशाला की ओर से तथा अन्य भी विद्वान् पंडितों के विवेचन प्रकाशित हुए है। हिन्दी भाषा में इस प्रकार के विवेचन नहींवत् उपलब्ध है ।

वर्षों पूर्व हिन्दी भाषा में स्थानकवासी संप्रदाय के मुनिश्री मिश्रीमलजी द्वारा विवेचित दूसरे कर्मग्रन्थ को भी ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत विवेचन तैयार किया है। छद्मस्थतावश जाने-अनजाने में कहीं स्खल्लनाएं रह गई हो तो त्रिविध-त्रिविध मिच्छा मि दुक्कडम् ।

श्री सीमंधर शांतिसूरि जैन ट्रस्ट,
वासावी टेंपल रोड, सज्जनराव सर्कल,
वी.वी. पुरम्, बेंगलोर-560 004.
दि. 1-8-2017

अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यासप्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी पादपद्मरेणु
आचार्य विजय रत्नसेनसूरि
(प्रथम आवृत्ति में से)

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा आलेखित हिन्दी साहित्य

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
1.	वात्सल्य के महासागर	2038	अध्यात्मयोगी पू. गुरुदेव का जीवन परिचय	बाली
2.	सामायिक सूत्र विवेचना	2039	सामायिक सूत्रों का विवेचन	
3.	चैत्यवंदन सूत्र विवेचना	2040	चैत्यवंदन के सूत्रों का विवेचन	
4.	आलोचना सूत्र विवेचना	2040	इच्छामिठामि आदि सूत्रों का विवेचन	
5.	श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचन	2041	वंदित्तु सूत्र पर विस्तृत विवेचन	
6.	कर्मन् की गत न्यारी	2041	महाबल-मलयासुंदरी का चरित्र	पूना
7.	आनंदघन चौबीसी विवेचन	2041	पू.आनंदघनजी के 24 स्तवनों का विवेचन	विजयापूर
8.	मानवता तब महक उठेगी	2041	मार्गानुसारिता के 18 गुणों का विवेचन	
9.	मानवता के दीप जलाएं	2043	मार्गानुसारिता के 17 गुणों का विवेचन	
10.	जिंदगी जिंदादिली का नाम है	2044	पू.पादलिप्तसूरिजी आदि चरित्र	कैलाश नगर राज.
11.	चेतन ! मोहनींद अब त्यागो	2044	'चेतन ज्ञान अजुवालिए' पर विवेचन	रानीगांव
12.	युवानो ! जागो	2045	धुम्रपान आदि पर विवेचन	रानीगांव
13.	शांत सुधारस-विवेचन भाग 1	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
14.	शांत सुधारस- विवेचन भाग 2	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
15.	रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे	2045	लेखों का संग्रह	जयपुर
16.	मृत्यु की मंगल यात्रा	2046	'मृत्यु' विषयक पत्रों का संग्रह	सेवाडी
17.	जीवन की मंगल यात्रा	2046	जीवन की सफलता के उपाय	पिंडवाडा
18.	महाभारत और हमारी संस्कृति-1	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	जयपुर
19.	महाभारत और हमारी संस्कृति-2	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	पिंडवाडा
20.	तब चमक उठेगी युवा पीढी	2047	नव युवकों को मार्गदर्शन	पिंडवाडा
21.	The Light of Humanity	2047	मार्गानुसारिता के गुणों का वर्णन	उदयपुर
22.	अंखियाँ प्रभु दर्शन की प्यासी	2047	पू.यशो.वि. की चौबीसी पर विवेचन	शंखेश्वर
23.	युवा चेतना विशेषांक	2047	व्यसनादि पर लेखों का संग्रह	उदयपुर
24.	तब आंसू भी मोती बन जाते है	2047	सागरदत्त चरित्र	उदयपुर
25.	शीतल नहीं छाया रे (गुज.)	2047	गुजराती वार्ताओं का संग्रह	
26.	युवा संदेश	2048	नवयुवकों को शुभ संदेश	पाटण
27.	रामायण में संस्कृति भाग 1	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	राजकोट

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
28.	रामायण में संस्कृति-भाग 2	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	जामनगर
29.	जीवन निर्माण विशेषांक	2049	सद्गुणोपासना संबंधी लेख	जामनगर
30.	श्रावक जीवन दर्शन	2049	श्राद्धविधि ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद	गिरधरनगर
31.	The Message for the youth	2049	युवा संदेश का अंग्रेजी अनुवाद	गिरधरनगर
32.	यौवन सुरक्षा विशेषांक	2049	ब्रह्मचर्य विषयक लेखों का संग्रह	गिरधरनगर
33.	आनंद की शोध	2050	5 जाहिर प्रवचन	गिरधरनगर
34.	आग और पानी भाग-1	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
35.	आग और पानी भाग-2	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
36.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	2068	शत्रुंजय महिमा एवं यात्रा विधि	पालीताणा
37.	सवाल आपके, जवाब हमारे	2050	जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तरी	माटुंगा
38.	जैन विज्ञान	2050	नव तत्व के पदार्थों पर विवेचन	थाणा
39.	आहार विज्ञान विशेषांक	2050	जैन आहार पद्धति	थाणा
40.	How to live true life ?	2050	जीवन की मंगल यात्रा का अनुवाद	थाणा
41.	भक्ति से मुक्ति	2050	प्रभु भक्ति के स्तवन आदि	थाणा
42.	आओ ! प्रतिक्रमण करे	2051	राई व देवसी आदि प्रतिक्रमण	थाणा
43.	प्रिय कहानियाँ	2051	कहानियों का संग्रह	मुलुंड
44.	अध्यात्म योगी पूज्य गुरुदेव	2051	पं. श्री के जीवन विषयक लेख	भायखला
45.	आओ ! श्रावक बने	2051	श्रावक के 12 व्रतों का निर्देश	कल्याण
46.	गौतम स्वामी-जंबुस्वामी	2051	महापुरुषों का विस्तृत जीवन	कल्याण
47.	जैनाचार विशेषांक	2051	जैन आचार विषयक लेख	कल्याण
48.	हंसश्राद्धव्रत दीपिका (गु.)	2051	श्रावक के 12 व्रत	कल्याण
49.	कर्म को नहीं शर्म	2052	भीमसेन चरित्र	वुर्ला
50.	मनोहर कहानियाँ	2052	प्रेरणादायी 90 कहानियाँ	वुर्ला
51.	मृत्यु-महोत्सव	2052	मृत्यु पर विवेचन	दादर
52.	नवलाख नवकार	2052	नवकार	
53.	सफलता की सीढियाँ	2052	श्रावक के 21 गुणों पर विवेचन	दादर
54.	श्रमणाचार विशेषांक	2052	साधु जीवनचर्या विषयक	
55.	विविध देववंदन	2052	दीपावली आदि देववंदन	भायंदर
56.	नवपद-प्रवचन	2052	नवपद के प्रवचन	चीराबाजार
57.	ऐतिहासिक कहानियाँ	2052	भरत आदि 19 महापुरुष	सायन
58.	तेजस्वी सितारे	2053	स्थूलभद्र आदि छ महापुरुष	सायन
59.	सन्नारी विशेषांक	2053	सन्नारी विषयक लेख संग्रह	सायन

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
60.	मिच्छामि दुक्कडम्	2053	क्षमापना पर उपदेश	सायन
61.	Panch Pratikraman Sootra	2053	पंच प्रतिक्रमण मूल सूत्र	सायन
62.	जीवन ने जीवी तूं जाण (गुज.)	2053	श्रद्धांजलि लेखों का संग्रह	सायन
63.	आवो ! वार्ता कहुं (गुज.)	2053	विविध वार्ताओं का संग्रह	सायन
64.	अमृत की बुंदे	2054	प्रेरणादायी उपदेश	बांद्रा (ई)
65.	श्रीपाल-मयणा	2054	श्रीपाल और मयणा सुंदरी	थाणा
66.	शंका और समाधान-भाग-1	2054	1200 प्रश्नों के जवाब	थाणा
67.	प्रवचन धारा	2054	पांच जाहिर प्रवचन	धूले
68.	राजस्थान तीर्थ विशेषांक	2054	राजस्थान के तीर्थ	धूले
69.	क्षमापना	2054	क्षमापना संबंधी चिंतन	धूले
70.	भगवान महावीर	2054	महावीर प्रभु के 27 भव	धूले
71.	आओ ! पौषध करें	2055	पौषध की विधि	चिंचवड
72.	प्रवचन मोती	2054	उपदेशात्मक वचन	चिंचवड
73.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	2055	चैत्यवंदन-स्तुति संग्रह	चिंचवड
74.	श्रावक कर्तव्य भाग 1	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
75.	श्रावक कर्तव्य भाग 2	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
76.	कर्म नचाए नाच	2056	महासती तरंगवती चरित्र	सोलापूर
77.	माता-पिता	2056	संतानों के कर्तव्य	सोलापूर
78.	प्रवचन-रत्न	2056	प्रवचनों का आंशिक अवतरण	पूना
79.	आओ ! तत्वज्ञान सीखे !	2056	जैन तत्वज्ञान के रहस्य	चिंचवड स्टे.
80.	क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद	2056	क्रोध के कटु परिणाम	चिंचवड स्टे.
81.	जिन शासन के ज्योतिर्धर	2057	प्रभावक महापुरुष	चिंचवड गांव
82.	आहार क्यों और कैसे ?	2057	आहार संबंधी जानकारी	दहीसर
83.	महावीर प्रभु का सचित्र जीवन	2057	सचित्र संपूर्ण जीवन	थाणा
84.	प्रभु पूजन सुख संपदा	2057	प्रभु दर्शन पूजन विधि	भिवंडी
85.	भाव श्रावक	2057	भाव श्रावक के 17 गुणों पर विवेचन	भायंदर
86.	महान् ज्योतिर्धर	2057	रामचंद्रसूरीश्वरजी का जीवन	भायंदर
87.	संतोषी नर सदा सुखी	2058	लोभ के कटु परिणाम	गोरेगांव
88.	आओ ! पूजा पढाए !	2058	चोसठ प्रकारी पूजाओं के अर्थ	गोरेगांव
89.	शत्रुंजय की गौरव गाथा	2058	शत्रुंजय के 16 उद्धार	भायंदर
90.	चिंतन मोती	2058	विविध चिंतनों का संग्रह	टिंबर मार्केट-पूना
91.	प्रेरक कहानियाँ	2058	प्रेरणादायी कहानियाँ व नाटक	पूना

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
92.	आईवडिलांचे उपकार	2058	'माता-पिता' का मराठी अनुवाद	पूना
93.	महासतियों का जीवन संदेश	2059	सुलसा आदि के चरित्र	देहुरोड
94.	आनंदघनजी पद विवेचन	2059	आनंदघनजी के 18 पदों पर विवेचन	पूना
95.	Duties towards Parents	2059	माता-पिता का अंग्रेजी	पूना
96.	चौदह गुणस्थानक	2059	'गुणस्थानक क्रमारोह विवेचन	येरवडा
97.	पर्युषण अष्टाह्निक प्रवचन	2059	पर्युषणपर्व के प्रवचन	येरवडा
98.	मधुर कहानियाँ	2059	कुमारपाल आदि का चरित्र	येरवडा
99.	पारस प्यारो लागे	2060	पार्श्व प्रभु के 10 भव आदि	येरवडा
100.	बीसवीं सदी के महानयोगी	2060	पूं.पं.श्री भद्रंकरविजयजी स्मृति ग्रंथ	दीपक ज्योतिटॉवर
101.	अमरवाणी	2060	पूं.पं. श्री भद्रंकरविजयजी म. के प्रेरक प्रवचन	दीपक ज्योतिटॉवर
102.	कर्म विज्ञान	2060	'कर्म विपाक' पर विवेचन	दीपक ज्योतिटॉवर
103.	प्रवचन के बिखरे फूल	2061	प्रवचन के सारभूत अवतरण	बोरीवली (ई)
104.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	2061	कल्पसूत्र पर दिए प्रवचन	थाणा
105.	आदिनाथ शांतिनाथ चरित्र	2061	प्रभु के भवों का वर्णन	थाणा
106.	ब्रह्मचर्य	2061	ब्रह्मचर्य पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
107.	भाव सामायिक	2061	सामायिक सूत्रों पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
108.	राग म्हणजे आग	2061	'क्रोध आबाद' का मराठी	श्रीपालनगर, मुंबई
109.	आओ ! उपधान-पौषध करे	2062	उपधान संबंधी विस्तृत जानकारी	भिवंडी
110.	प्रभो ! मन मंदिर पधारो	2062	प्रभु भक्ति विषयक चिंतन	आदीश्वर धाम
111.	सरस कहानियाँ	2062	नल-दमयंती आदि कहानियाँ	परेल मुंबई
112.	महावीर वाणी	2062	आगमोक्त सूक्तियों पर विवेचन	कर्जत
113.	सद्गुरु उपासना	2062	सद्गुरु का स्वरुप	कर्जत
114.	चिंतनरत्न	2062	विविध चिंतन	कर्जत
115.	जैनपर्व प्रवचन	2063	कार्तिक पूनम आदि पर्वों के प्रवचन	कर्जत
116.	नींव के पत्थर	2063	अध्यात्म प्राप्ति के 15 गुण	आदीश्वर धाम
117.	विखुरलेले प्रवचन मोती	2063	प्रवचन के बिखरे फूल का मराठी	वणी
118.	शंका समाधान भाग-2	2063	1200 प्रश्नों के जवाब	आदीश्वर धाम
119.	श्रमण शिल्पी प्रेमसूरीश्वरजी	2063	पूज्यश्री का संक्षिप्त जीवन	भायंदर
120.	भाव चैत्यवंदन	2063	जग चिंतामणि से सूत्रों पर विवेचन	भिवंडी
121.	Youth will shine then	2063	'तब चमक उठेगी' का अंग्रेजी अनुवाद	भिवंडी
122.	नव तत्त्व विवेचन	2063	'नवतत्त्व' पर विवेचन	भिवंडी

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
123.	जीव विचार विवेचन	2063	'जीव विचार' पर विवेचन	भिवंडी
124.	भव आलोचना	2064	श्रावक जीवन संबंधी आलोचना स्थल	
125.	विविध पूजाएं	2064	नवपद, आदि पूजाओं का भावानुवाद	आदीश्वर धाम
126.	गुणवान बनो	2064	18 पाप स्थानकों पर विवेचन	महावीर धाम
127.	तीन भाष्य	2064	तीन भाष्यों का विवेचन	आदीश्वर धाम
128.	विविध तपमाला	2064	प्रचलित तपों की विधियां	डोंबिवली
129.	महान् चरित्र	2064	पेथडशा आदि का जीवन	कल्याण
130.	आओ ! भावयात्रा करे	2064	शत्रुंजय आदि भाव यात्राएं	कल्याण
131.	मंगल स्मरण	2064	नवस्मरण आदि संग्रह	कल्याण
132.	भाव प्रतिक्रमण भाग-1	2065	वंदित्तु तक हिन्दी विवेचन	विक्रोली
133.	भाव प्रतिक्रमण भाग-2	2065	आयरिय उवज्झाए से विवेचन	विक्रोली
134.	श्रीपालरास और जीवन	2065	श्रीपाल मयणा का रास एवं जीवन	थाणा
135.	दंडक विवेचन	2065	दंडक सूत्र पर हिन्दी विवेचन	कुर्ला
136.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें	2065	संवत्सरी प्रतिक्रमण विधि	भिवंडी
137.	सुखी जीवन की चाबियाँ	2066	मार्गानुसारिता के 35 गुण (कमलदर्शन)	मुंबई
138.	पाँच प्रवचन	2066	पाँच जाहिर प्रवचन	मोहना
139.	सज्झायों का स्वाध्याय	2066	सज्झायों का संग्रह	मोहना
140.	वैराग्य शतक	2066	वैराग्य पोषक विवेचन	मलाड
141.	गुणानुवाद	2066	10 आचार्यों का जीवन परिचय	रोहा
142.	सरल कहानियाँ	2066	प्रेरणादायी कथाएं	रोहा
143.	सुख की खोज	2066	सुख संबंधी चिंतन	रोहा
144.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-1	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-1	थाणा
145.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-2	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-2	थाणा
146.	आध्यात्मिक पत्र	2067	पू.पं.श्री भद्रंकरविजयजी म. के पत्र	थाणा
147.	शंका और समाधान भाग-3	2067	छोटे मोटे 750 प्रश्नों के जवाब	थाणा
148.	जीवन शणगार प्रवचन	2067	संस्कार शिबिर-रोहा के प्रवचन	धारावी
149.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-1	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
150.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-2	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
151.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-1	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
152.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-2	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
153.	ध्यान साधना	2068	ध्यान शतक-आराधना धाम	हालार
154.	श्रावक आचार दर्शक	2068	धर्म संग्रह का हिन्दी अनुवाद	राजकोट

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
155.	अध्यात्माचा सुगंध (मराठी)	2068	नीव के पत्थर का मराठी अनुवाद	नासिक
156.	इन्द्रिय पराजय शतक	2068	वैराग्य वर्धक	पालीताणा
157.	जैन शब्द कोष	2068	शास्त्रिय शब्दों के अर्थ	पालीताणा
158.	नया दिन-नया संदेश	2069	तिथि अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा
159.	तीर्थ यात्रा	2069	शत्रुंजय गिरनार तीर्थ महिमा	हस्तगिरि तीर्थ
160.	महामंत्र की साधना	2069	चिन्तन	पिन्डवाडा
161.	अजातशत्रु अणगार	2069	श्रद्धाजंली लेख	भद्रंकर नगर-लुणावा
162.	प्रेरक प्रसंग	2069	कहानियां	बाली
163.	The way of Metaphysical Life	2069	नीव के पत्थर का English अनुवाद	बाली
164.	आओ ! प्राकृत सीखे भाग-1	2070	प्राकृत प्रवेशिका	सेसली तीर्थ
165.	आओ ! प्राकृत सीखे भाग-2	2070	Guide Book	सेसली तीर्थ
166.	आओ ! भाव यात्रा करे ! भाग-2	2070	68 तीर्थ भावयात्रा	बेडा तीर्थ
167.	Pearls of Preaching	2070	प्रवचन मोती का अनुवाद	नाकोडा तीर्थ
168.	नवकार चिंतन	2070	चिंतन	उदयपूर
169.	आओ दुर्ध्यान छोडे ! भाग-1	2070	63 दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव
170.	आओ दुर्ध्यान छोडे ! भाग-2	2070	63 प्रकार के दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव
171.	परम तत्त्व की साधना भाग-1	2071	चिन्तन	कीर्ति स्थंभ घाणेराव
172.	रत्न संदेश भाग-1	2071	दैनिक सुविचार	बाली
173.	गागर मे सागर	2071	बाली तथा घाणेराव के प्रवचन अंश	पालीताणा
174.	रत्न संदेश भाग-2	2071	तारीख अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा
175.	My Parents	2071	माता-पिता का English अनुवाद	पालीताणा
176.	श्रावकाचार प्रवचन-1	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
177.	श्रावकाचार प्रवचन-2	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
178.	परम तत्त्व की साधना भाग-2	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
179.	परम तत्त्व की साधना भाग-3	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
180.	बाली चातुर्मास विशेषांक	2069	बाली चातुर्मास	बाली
181.	उपधान स्मृति विशेषांक	2072	पालीताणा में उपधान	पालीताणा
182.	नवपद आराधना	2072	नवपद के 11 प्रवचन	लोढा धाम
183.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-1	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	गुंदेचा गार्डन
184.	हेमचंद्राचार्य और कुमारपाल	2072	जीवन चरित्र	डोंबिवली
185.	आईचे वात्सल्य	2072	माता-पिता का मराठी अनुवाद	नासिक
186.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-2	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	नासिक

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
187.	जैन-संघ व्यवस्था	2072	देव द्रव्य आदि की व्यवस्था	नासिक
188.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-1	2074	1 से 16 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
189.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-2	2074	17 से 24 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
190.	संस्मरण	2073	संयम जीवन के अनुभव	गोकाक
191.	संबोह सित्तरि	2073	वैराग्य का अमृतकुंभ	गोकाक
192.	विवेकी बनों !	2073	विवेक गुण पर विवेचन	राणे बेन्नुर
193.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-3	2073	तत्त्व चिंतन	बेंगलोर
194.	लघु संग्रहणी	2073	जैन भूगोल	बेंगलोर
195.	समाधि मृत्यु	2073	मृत्यु समय समाधि के उपाय	बेंगलोर
196.	दूसरा कर्मग्रंथ	2073	दूसरा कर्मग्रंथ का विवेचन	बेंगलोर
197.	चौथा कर्मग्रंथ	2073	चौथा कर्मग्रंथ का विवेचन	बेंगलोर
198.	आदर्श कहानियाँ	2074	प्रेरणादायी कहानियाँ	बेंगलोर
199.	प्रवचन वर्षा	2074	प्रवचन के बिंदु	सुशीलधाम
200.	अमृत रस का प्याला	2074	199 पुस्तकों का सार	बेंगलोर
201.	महान् योगी पुरुष	2074	पं. भद्रंकरविजयजी के जीवन प्रसंग	बेंगलोर
202.	बारह चक्रवर्ती	2074	बारह चक्रवर्तियों का जीवन	मैसूर
203.	प्रेरक प्रवचन	2074	प्रेरणादायी प्रवचन	मैसूर
204.	पाँचवाँ-कर्मग्रंथ	2075	कर्मग्रंथ का विवेचन	मैसूर
205.	छठा-कर्मग्रंथ	2074	हिन्दी में विवेचन	बेंगलोर
206.	Celibacy	2074	ब्रह्मचर्य का अनुवाद	सेलम (T.N.)
207.	मंत्राधिराज प्रवचन सार	2074	पू.भद्रंकर वि. के प्रवचनांश	ईरोड (T.N.)
208.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	2075	साधु जीवन के सूत्रों पर विवेचन	कोयम्बतूर
209.	मोक्ष मार्ग के कदम	2075	मोक्ष मार्ग के 21 गुण	कोयम्बतूर
210.	शंका समाधान भाग-4	2075	मननीय प्रश्नों के जवाब	कोयम्बतूर
211.	व्यसन-मुक्ति	2076	सात व्यसन के अनर्थ	चैनइ
212.	गणधर-संवाद	2076	गौतम स्वामि आदि 11 गणधर प्रतिबोध कथा	चैनइ
213.	New Message for a New Day	2077	सुवाक्य संकलन (अंग्रेजी)	चैनइ
214.	चिंतन का अमृत-कुंभ	2077	पूज्यश्री का मार्मिक चिंतन	बेंगलोर
215.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव-बलदेव	2077	चरित्र ग्रंथ	बेंगलोर
216.	अचिंत्य चिंतामणि (भाग-1)	2077	नमस्कार महामंत्र की महिमा	बल्लारी (Kar.)
217.	अचिंत्य चिंतामणि (भाग-2)	2077	नमस्कार महामंत्र की महिमा	बल्लारी (Kar.)

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
218.	हार्दिक श्रद्धांजलि	2077	पंन्यासजी म.सा. के शिष्य प्रशिष्य आदि के जीवन चरित्र	बल्लारी (कर्णाटक)
219.	सुखी जीवन के Mile-Stone	2077	प्रवचन बिन्दू	बीजापूर(Kar.)
220.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा-1	2077	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर(Kar.)
221.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा-2	2077	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर(Kar.)
222.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा-3	2077	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर(Kar.)
223.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा-4	2078	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर(Kar.)
224.	अर्हद् दिव्य-संदेश (दीक्षा-विशेषांक)	2078	संयम जीवन की महत्ता एवं मु. विमलपुण्यविजयजी की दीक्षा प्रसंग	इचलकरंजी (M.S.)
225.	'बेंगलोर' प्रवचन-मोती	2078	बेंगलोर में हुए प्रवचन	कराड (M.S.)
226.	श्री नमस्कार महामंत्र	2078	पू.पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	बोरीवली (ई)
227.	महामंत्र की अनुप्रेक्षाएँ	2078	पू.पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	भायंदर (W)
228.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	2078	64 प्रकारी पूजा का विवेचन	भायंदर
229.	तत्त्वार्थ-सूत्र (भाग-1)	2078	तत्त्वार्थ सूत्र का हिन्दी विवेचन	भायंदर
230.	तत्त्वार्थ-सूत्र (भाग-2)	2078	तत्त्वार्थ सूत्र का हिन्दी विवेचन	भायंदर
231.	वर्धमान सामायिक साधना श्रेणी	2078	सामायिक विधि एवं श्रेणी	भायंदर
232.	वैराग्य-वाणी	2079	पू.आ.श्री रामचन्द्रसूरिजी के प्रवचन	भायंदर
233.	सम्यग्दर्शन का सूर्योदय	2079	समकित 67 बोल विवेचन	महावीर धाम
234.	जीवन झांकी	2079	मु. पुण्योदयविजयजी का परिचय	कामसेट
235.	मन के जीते जीत है	2079	मन पर चिंतन	थाणा
236.	नमस्कार मीमांसा	2079	नवकार चिंतन	भायंदर
237.	परमेष्ठि-नमस्कार	2079	नवकार चिंतन	निगडी
238.	धर्म बीज	2079	चार भावना चिंतन	निगडी
239.	45 आगम परिचय	2079	आगम बोध	निगडी
240.	नित्य देव वंदन	2080	देव वंदन	लोढा धाम
241.	श्री भद्रंकर प्रश्नोत्तरी	2080	शंका समाधान	वडगांव
242.	अध्यात्मयोगी से प्रश्नोत्तरी	2080	शंका समाधान	वडगांव
243.	तीसरा कर्मग्रन्थ	2080	तीसरा कर्मग्रंथ का विवेचन	वडगांव

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा. का संक्षिप्त परिचय

गृहस्थ नाम	: राजु (राजमल चोपड़ा)
माता का नाम	: चंपाबाई
पिता का नाम	: छगनराजजी गेनमलजी चोपड़ा
जन्मभूमि	: बाली (राज.)
जन्म तिथि	: भादो सुद-3, संवत् 2014 दि. 16-9-1958
बचपन में धार्मिक अभ्यास	: पंच प्रतिक्रमण-नवस्मरण आदि
ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार	: 18 जून 1974
व्यावहारिक अभ्यास	: 1st year B.Com. (पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज फालना-राज.)
दीक्षा दाता	: पू.पं. श्री हर्षविजयजी गणिवर्य
गुरुदेव	: अध्यात्मयोगी पू. पंन्यास **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**
दीक्षा दिन	: माघ शुक्ला 13, संवत् 2033 दि. 2-2-1977
समुदाय	: शासन प्रभावक पू.आ. **श्री रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.**
दीक्षा दिन विशेषता	: भारत भर में लगभग 50 ऊपर दीक्षाएँ
108 मुमुक्षु वरघोड़ा	: 9 जनवरी 1977, मुंबई
दीक्षा स्थल	: न्याति नोहरा-बाली राज.
दीक्षा समय उम्र	: 18 वर्ष
बड़ी दीक्षा	: फाल्गुन शुक्ला 12, संवत् 2033
बड़ी दीक्षा स्थल	: घाणेराव (राज.)
प्रथम चातुर्मास	: संवत् 2033 पाटण पू.पं. श्री हर्षविजयजी के सान्निध्य में

◆ **अभ्यास :** प्रकरण, भाष्य, 6 कर्मग्रंथ, कम्मपयडी, पंचसंग्रह, न्याय, काव्य, कोश, संस्कृत-प्राकृत व्याकरण, संस्कृत-प्राकृत साहित्य वाचन, ज्योतिष, आगम वाचन आदि.

◆ **भाषा बोध :** हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी, संस्कृत, प्राकृत, मराठी आदि

◆ **प्रथम प्रवचन प्रारंभ :** फागुन सुदी 14, संवत् 2034 पाटण (गुजरात)

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन प्रारंभ :** बाली संवत् 2038

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन :** बाली (दो बार), पाली (दो बार), रतलाम, अहमदाबाद (ज्ञानमंदिर), पाटण, सुरेन्द्रनगर, रानीगाँव, पिंडवाड़ा, उदयपुर, जामनगर, अहमदाबाद (गिरधरनगर), थाणा, कल्याण, दादर (मुंबई), सायन (मुंबई), धूलिया, कराड़, चिंचवड़, भायंदर, पूना, येरवड़ा, दीपक ज्योति टॉवर, श्रीपाल नगर, कर्जत, भिवंडी (दो बार), कल्याण (दो बार), रोहा, भायंदर, पालीताणा (दो बार) नासिक, बेंगलोर, मैसूर, कोयम्बत्तूर, चैन्नइ, बीजापूर, भायंदर, निगडी ।

◆ **विहार क्षेत्र :** राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्णाटक तामिलनाडू आदि ।

◆ **पादविहार :** लगभग 47,000 कि.मी. ।

◆ **(छ'री पालित संघ में मार्गदर्शन-प्रवचन) :** बरलूट से शत्रुंजय, गोदन से जैसलमेर, वल्लभीपुर से पालीताणा, लुणावा से राणकपुर पंचतीर्थी

◆ **छ'री पालक निश्रादाता :** उदयपुर से केशरियाजी, गिरधरनगर से शंखेश्वर, धूलिया से नेर, कराड़ से कुंभोज, सोलापुर से बार्शी, भिवंडी से महावीर धाम, कर्जत से मानस मंदिर, हस्तगिरि से शत्रुंजय होकर गिरनार, शत्रुंजय बारह गाऊ, सेवाडी से राणकपूर पंचतीर्थी, कोयम्बत्तूर से अव्वलपुंदरी ।

◆ **प्रथम पुस्तक आलेखन : ''वात्सल्य के महासागर''** वि.सं.संवत् 2038

◆ **अद्यावधि प्रकाशित पुस्तकें :** 243

◆ **शिष्य-प्रशिष्य : स्व. मु. श्री उदयरत्नविजयजी म.,**
स्व. मुनि श्री केवलरत्नविजयजी म., स्व. मुनि श्री कीर्तिरत्नविजयजी म.,
मुनि श्री प्रशांतरत्नविजयजी म., मुनि श्री शालिभद्रविजयजी म.,
मुनि श्री स्थूलभद्रविजयजी म., स्व. मुनि श्री यशोभद्रविजयजी म.,
मुनि श्री विमलपुण्यविजयजी म., मुनि श्री निर्वाणभद्रविजयजी म.
मुनि श्री महापुण्यविजयजी म.

◆ **उपधान निश्रा दाता :** कुर्ला, धुले, येरवडा, आदीश्वर धाम (दो), कर्जत, विक्रोली, मोहना, पालीताणा (दो बार), सेसली, कीर्तिस्तंभ (घाणेराव), नासिक, सुशीलधाम (बेंगलोर), मैसूर, महावीर धाम (मुंबई), लोढा धाम ।

◆ **गणि पदवी :** वैशाख वदी-6, संवत् 2055, दि.7-5-1999 चिंचवड गाँव, पूना.

◆ **पंन्यास पदवी :** कार्तिक वदी-5, संवत् 2061, दि.2-12-2004 श्रीपालनगर, मुंबई.

◆ **आचार्य पदवी :** पोष वदी-1, संवत् 2067, दि.20-1-2011 थाणा ।

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	विषय	पृ. सं
1.	आठ कर्म चार्ट	1
2.	कुछ संज्ञाए	3
3.	दूसरा-कर्मग्रन्थ-मूलसूत्र	5
4.	(मंगलाचरणादि)	8
5	चौदह-गुणस्थानक	11
6.	सम्यक्त्व और ग्रन्थिभेद की प्रक्रिया	15
7.	उपशम सम्यक्त्व का स्वरूप	16
8.	उपशम श्रेणी का स्वरूप	30
9.	क्षपक श्रेणी का स्वरूप	33
10.	केवली समुद्घात	35
11.	योग निरोध	36
12.	गुणस्थानकों का संक्षिप्त	38
13.	बंध-विधान	41
14.	बंध यंत्र	55
15.	गुणस्थानकों के बंध विच्छेदादि प्रकृतियाँ	56
16.	उदय विधान	57
17.	उदय यंत्र	70
18.	गुणस्थानक का उदय विच्छेदादि प्रकृतियाँ	71
19.	उदीरणा	72
20.	उदीरणा यंत्र	74
21.	गुणस्थानक उदीरणा विच्छेदादि प्रकृतियाँ	75
22.	सत्ता-विधान	76
23.	सत्ता-यंत्र	88
24.	गुणस्थानक में सत्ताविच्छेदादि प्रकृतियाँ	90
25.	गुणस्थानक-बंधादि विषयक यंत्र	92

1 आठ कर्म चार्ट

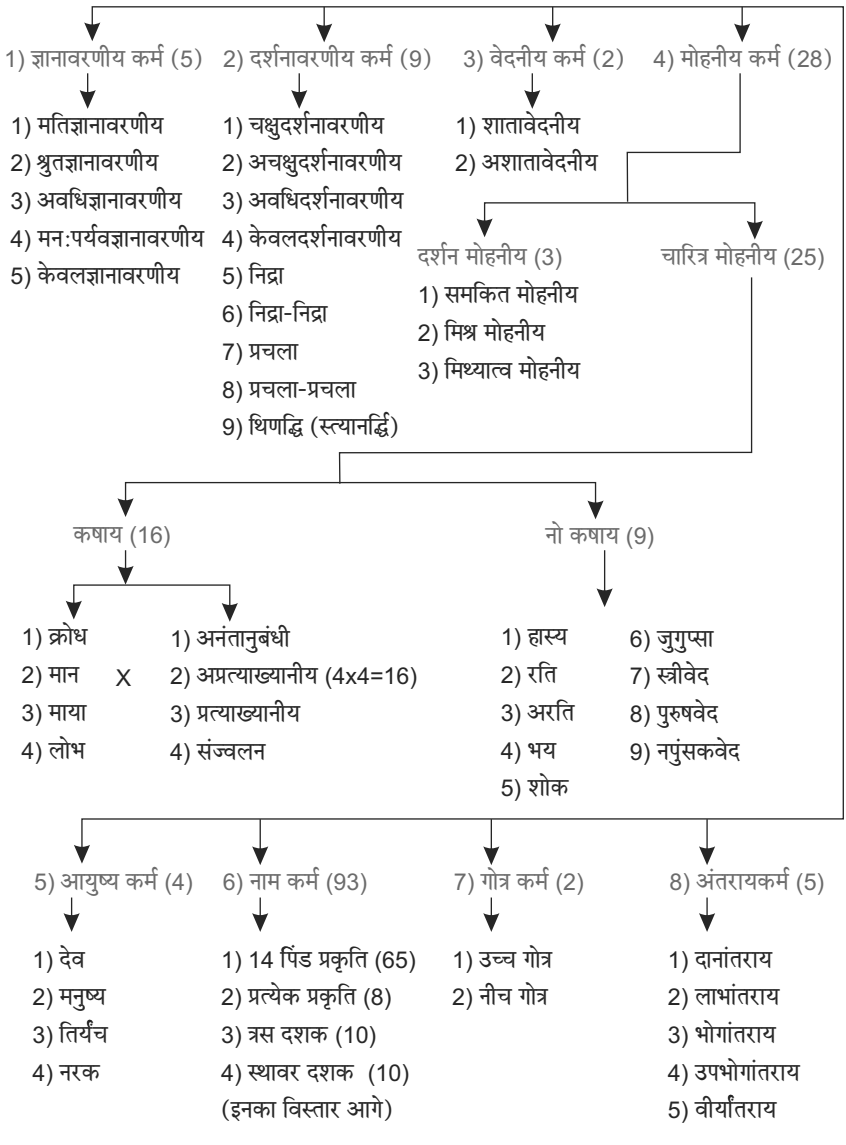
कर्म (8)
1) ज्ञानावरणीय कर्म (5)
1) मतिज्ञानावरणीय
2) श्रुतज्ञानावरणीय
3) अवधिज्ञानावरणीय
4) मन:पर्यवज्ञानावरणीय
5) केवलज्ञानावरणीय
2) दर्शनावरणीय कर्म (9)
1) चक्षुदर्शनावरणीय
2) अचक्षुदर्शनावरणीय
3) अवधिदर्शनावरणीय
4) केवलदर्शनावरणीय
5) निद्रा
6) निद्रा-निद्रा
7) प्रचला
8) प्रचला-प्रचला
9) थिणद्धि (स्त्यानर्द्धि)
3) वेदनीय कर्म (2)
1) शातावेदनीय
2) अशातावेदनीय
4) मोहनीय कर्म (28)
दर्शन मोहनीय (3)
1) समकित मोहनीय
2) मिश्र मोहनीय
3) मिथ्यात्व मोहनीय
चारित्र मोहनीय (25)
कषाय (16)
1) क्रोध
2) मान
3) माया
4) लोभ
X
1) अनंतानुबंधी
2) अप्रत्याख्यानीय (4x4=16)
3) प्रत्याख्यानीय
4) संज्वलन
नो कषाय (9)
1) हास्य
2) रति
3) अरति
4) भय
5) शोक
6) जुगुप्सा
7) स्त्रीवेद
8) पुरुषवेद
9) नपुंसकवेद
5) आयुष्य कर्म (4)
1) देव
2) मनुष्य
3) तिर्यंच
4) नरक
6) नाम कर्म (93)
1) 14 पिंड प्रकृति (65)
2) प्रत्येक प्रकृति (8)
3) त्रस दशक (10)
4) स्थावर दशक (10)
(इनका विस्तार आगे)
7) गोत्र कर्म (2)
1) उच्च गोत्र
2) नीच गोत्र
8) अंतरायकर्म (5)
1) दानांतराय
2) लाभांतराय
3) भोगांतराय
4) उपभोगांतराय
5) वीर्यांतराय

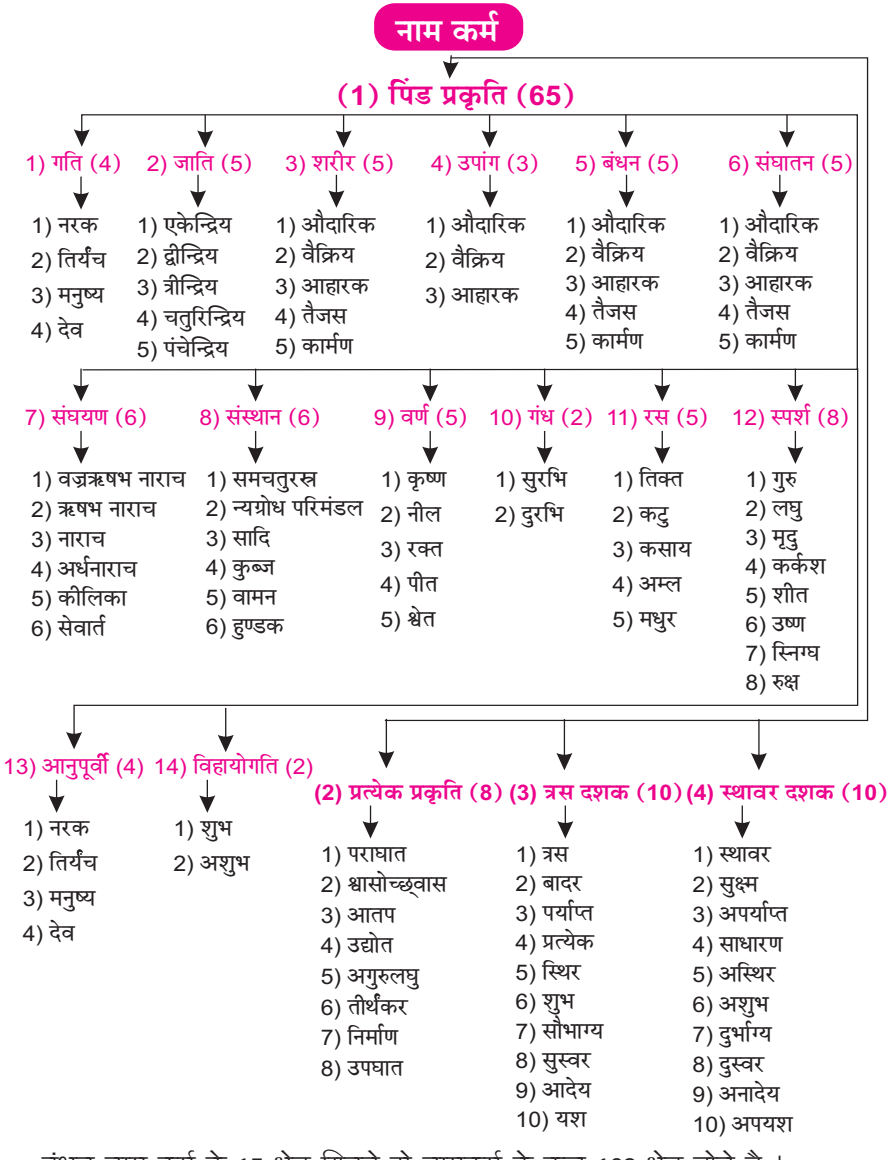

◆ बंधन नाम कर्म के 15 भेद गिनने से नामकर्म के कुल 103 भेद होते है ।

◆ बंधन नाम कर्म के 15 भेद– 1) औदारिक-औदारिक, 2) औदारिक-तैजस, 3) औदारिक-कार्मण, 4) औदारिक-तैजस-कार्मण, 5) वैक्रिय-वैक्रिय, 6) वैक्रिय-तैजस, 7) वैक्रिय-कार्मण, 8) वैक्रिय-तैजस कार्मण, 9) आहारक-आहारक, 10) आहारक-तैजस, 11) आहारक-कार्मण, 12) आहारक-तैजस कार्मण, 13) तैजस-कार्मण, 14) तैदस-तैजस, 15) कार्मण-कार्मण ।

2 कुछ संज्ञाए

(1) बंध=बंध होने वाली कर्म प्रकृतियाँ ।

(2) बंधविच्छेद=बंध रुक जाता है ।

(3) अबंध=यहाँ बंध नहीं होता परंतु आगे होता है । वैसे ही उदय, उदीरणा और सत्ता मे भी समझना ।

(4) थीणद्धि (स्त्यानर्द्धि) त्रिक =थीणद्धि, (स्त्यानर्द्धि) निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला ।

(5) निद्रा द्विक=निद्रा, प्रचला ।

(6) दर्शनावरण चतुष्क=चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण ।

(7) अनंतानुबंधि चतुष्क=अनन्तानुबंधि क्रोध-मान-माया-लोभ ।
और ऐसेही अप्रत्याख्यानीय चतुष्क, प्रत्याख्यानीय चतुष्क, संज्वलन चतुष्क समझना है ।

(8) मध्यमकषाय अष्टक=प्रत्याख्यानीय चतुष्क कषाय, अप्रत्याख्यानीय चतुष्क कषाय ।

(9) हास्य षट्क=हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा ।

(10) हास्य चतुष्क=हास्य, रति, भय, जुगुप्सा ।

(11) नरक त्रिक=नरकायुष्य, नरकगति, नरकानुपूर्वी, इसी तरह तिर्यंच त्रिक, मनुष्य त्रिक, देव त्रिक भी समझना है ।

(12) नरक द्विक =नरकगति, नरकानुपूर्वी, इसी तरह तिर्यंच द्विक, मनुष्य द्विक, देव द्विक भी समझना है ।

(13) जाति चतुष्क=एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति ।

(14) विकल त्रिक=द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति ।

(15) औदारिक द्विक=औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग । इसी तरह वैक्रिय द्विक, आहारक द्विक भी समझना है ।

(16) वैक्रिय अष्टक=नरक त्रिक, देव त्रिक, वैक्रिय द्विक ।

(17) मनुष्य पंचक=मनुष्य द्विक, औदारिक द्विक, वज्रऋषभनाराच संघयण ।

(18) तैजस द्विक=तैजसशरीर, कार्मणशरीर ।

(19) औदारीक सप्तक=औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, औदारिक बंधन चतुष्क, औदारिक संघातन ।
इसी तरह वैक्रिय सप्तक, आहारक चतुष्क भी समझना है ।

(20) औदारीक बंधन चतुष्क=औदारिक औदारिक, औदारिक तैजस, औदारिक कार्मण, औदारिक तैजसकार्मण ।

इसी तरह वैक्रियबंधन चतुष्क, आहारकबंधन चतुष्क समझना है ।

(21) तैजस सप्तक =तैजसशरीर, कार्मणशरीर, तैजस तैजस बंधन, तैजसकार्मण बंधन, कार्मण कार्मण बंधन, तैजस संघातन, कार्मण संघातन ।

(22) औदारीक चतुष्क=औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, औदारिक बंधन, औदारिक संघातन ।

इसी तरह वैक्रिय चतुष्क, आहारक चतुष्क जानना ।

(23) तैजस त्रिक=तैजस शरीर, तैजस बंधन, तैजस संघातन ।

(24) कार्मण त्रिक=कार्मण शरीर, कार्मण बंधन, कार्मण संघातन ।

(25) वर्णादि चतुष्क=वर्ण, गंध रस, स्पर्श ।

(26) अगुरुलघु चतुष्क=अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छवास ।

(27) आतप द्विक=आतप, उद्योत ।

(28) त्रस षट्क=त्रस, बादर, पर्याप्ता, प्रत्येक, स्थिर, शुभ ।

(29) त्रस चतुष्क=त्रस, बादर, पर्याप्ता, प्रत्येक ।

(30) त्रस त्रिक=त्रस, बादर, पर्याप्ता ।

(31) बादर त्रिक=बादर, पर्याप्ता, प्रत्येक ।

(32) प्रत्येक त्रिक=प्रत्येक, स्थिर, शुभ ।

(33) स्थिर त्रिक=स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश ।

(34) सुभग त्रिक=सुभग, सुस्वर, आदेय ।

(35) स्थावर चतुष्क=स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्ता, साधारण ।

(36) स्थावर द्विक=स्थावर, सूक्ष्म ।

(37) सूक्ष्म त्रिक=सूक्ष्म, अपर्याप्ता, साधारण ।

(38) अस्थिर षट्क=अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय, अयश ।

(39) दुर्भग त्रिक=दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय ।

दूसरा-कर्मग्रन्थ-मूलसूत्र

तह थुणिमो वीरजिणं, जह गुणठाणेसु सयल कम्माइं ।
बन्धुदओदीरणया सत्ता पत्ताणि खविआणि ।।1।।

मिच्छे सासण मीसे अविरयदेसे पमत्त अपमत्ते ।
निअट्टि अनिअट्टि सुहुमुवसम खीण सजोगि अजोगि गुणा ।।2।।

अभिनव कम्मग्गहणं, बंधो ओहेण तत्थ वीस सयं ।
तित्थयराहारगदुग, वज्जं मिच्छम्मि सतरसयं ।।3।।

नरयतिग जाइ थावर-चउ हुंडा-यव-छिवट्ठ-नपु-मिच्छं ।
सोलंतो इगहिअसय, सासणि तिरि-थीण-दुहगतिगं ।।4।।

अण-मज्झागिइ-संघयण, चउनिउज्जोअ कुखगइत्थित्ति ।
पणवीसंतो मीसे, चउसयरि दुआउ अ अबंधा ।।5।।

सम्मे सगसयरि जिणाउ, बंधि वइर-नर-तिय-बिय-कसाया ।
उरल-दुगंतो देसे, सत्तट्ठी तिअ कसायंतो ।।6।।

तेवट्ठि पमत्ते सोग, अरइ अथिरदुग अजस अस्सायं ।
वुच्छिज्ज छच्च सत्त व, नेइ सुराउं जया निट्ठं ।।7।।

गुणसट्ठि अपमत्ते, सुराउ बंधंतु जइ इहागच्छे ।
अन्नह अट्ठावन्ना, जं आहारगदुगं बंधे ।।8।।

अडवन्न अपुव्वाईम्मि, निद्ददुगंतो छप्पन्न पण भागे ।
सुरदुग-पणिंदि-सुख गइ, तस-नव उरलविणु-तणुवंगा ।।9।।

समचउर-निमिण-जिण-वन्न, अगुरुलहु-चउ-छलंसि तीसंतो ।
चरमे छवीस बंधो, हास-रई-कुच्छ-भयभेओ ।।10।।

अनियट्टि भाग पणगे, इगेग हीणो दुवीसविह बंधो ।
पुम संजलण चउण्हं, कमेण छेओ सतर सुहुमे ।।11।।

चउ-दंसणुच्च-जस-नाण-विग्घ-दसगं ति सोलसुच्छेओ ।
तिसु सायबंध छेओ, सजोगि बंधं तुऽणंतो अ ।।12।।

उदओ विवाग वेअणमुदीरणमपत्ति इह दुवीससयं ।
सतरसयं मिच्छे मीस सम्म आहार जिणणुदया ।।13।।

सुहुमतिगायव मिच्छं मिच्छत्तं सासणे इगारसयं ।
निरयाणु पुव्विणुदया, अण थावर इग विगलअंतो ।।14।।

मीसे सयमणु पुव्वीऽणुदया, मीसोदएण मीसंतो ।
चउ सयमजए सम्माऽणु पुव्वि खेवा बिअकसाया ।।15।।

मणु तिरिणु पुव्वि विउवट्ठ, दुहग अणाइज्जदुग सतर छेओ ।
सगसीइ देसि तिरिगइ-आउ निउज्जोअ तिकसाया ।।16।।

अट्ठच्छेओ इगसी पमत्ति आहार जुअ(ग)ल पक्खेवा ।
थीणतिगाहारगदुअ छेओ छस्सयरि अपमत्ते ।।17।।

सम्मत्तं तिमसंघयण-तियगच्छेओ बिसत्तरि अपुव्वे ।
हासाइ छक्क-अंतो, छसट्ठि अनियट्टि वेअतिगं ।।18।।

संजलणतिगं छ छेओ, सट्ठि सुहुमंमि तुरिअलोभंतो ।
उवसंतगुणे गुणसट्ठि, रिसह नाराय दुग अंतो ।।19।।

सगवन्न खीण दुचरिमि, निद्द दुगंतो अ चरिमि पणवन्ना ।
नाणंतराय दंसण चउ छेओ सजोगि बायाला ।।20।।

तित्थुदया उरला थिर, खगइ दुग परित्त तिग छ संठाणा ।
अगुरुलहु वन्नचउ निमिण, तेअ कम्माइसंघयणं ।।21।।

दूसर सुसर साया, साएगयरं च तीसवुच्छेओ ।
बारस अजोगि सुभगाइज्ज, जसन्नयर वेअणिअं ।।22।।

तस तिग पणिंदि मणुआउ गइ जिणुच्चंति चरिम समयंतो ।
उदउव्वुदीरणा परम पमत्ताइ सगगुणेसु ।।23।।

एसा पयडितिगुणा वेयणियाहार जुअल थीण तीगं ।
मणुआउ पमत्तंता, अजोगि अणुदीरगो भयवं ।।24।।

सत्ता कम्माण ठिइ बंधाइ लद्ध अत्तलाभाणं ।
संते अडयालसयं जा उवसमु विजिणु बिय तइए ।।25।।

अप्पुव्वाइ चउक्के, अण-तिरि-निरयाउ विणु बियालसयं ।
सम्माइ-चउसु सत्तग-खयंमि-इगचत्त-सयमहवा ।।26।।

खवगं तु पप्प चउसुवि पणयालं निरय तिरि सुराउ विणा ।
सत्तग विणु अडतीसं, जा अनियट्टि पढम भागो ।।27।।

थावरतिरि निरयायव-दुग थीण तिगेग विगल साहारं ।
सोलखओ दुवीस सयं, बियंसि बिय तिय कसायंतो ।।28।।

तइयाइसु चउदस तेर, बार छ पण चउ तिहिय सय कमसो ।
नपु इत्थि हासछग पुंस, तुरिअ कोह मय मायखओ ।।29।।

सुहुमि दुसय लोहंतो, खीण दुचरिमेग सय दुनिद्दखओ ।
नवनवइ चरिम समए, चउ दंसण नाण विग्घंतो ।।30।।

पणसीइ सजोगि अजोगि, दुचरिमे देव खगइ गंधदुगं ।
फासट्ठ वन्न रस तणु, बंधण संघाय पण निमिणं ।।31।।

संघयण अथिर संठाण, छक्क अगुरुलहु चउ अपज्जत्तं ।
सायं व असायं वा, परित्तुवंगतिग सुसर-निअं ।।32।।

बिसयरि खओ अ चरिमे, तेरस मणुअ तसतिग जसाइज्जं ।
सुभग-जिणुच्च-पणिंदिय-साया-सायेगयर-छेओ ।।33।।

नर अणुपुव्वि विणा वा, बारस चरिम समयंमि जो खविउं ।
पत्तो सिद्धिं देविंद-वंदियं नमह तं वीरं ।।34।।

आ. श्री देवेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. विरचित कर्मस्तव नामक

दूसरा कर्मग्रंथ

4 मंगलाचरणादि

तह थुणिमो वीरजिणं, जह गुणठाणेसु सयल कम्माइं ।
बन्धुदओदीरणया सत्ता पत्ताणि खविआणि ।।1।।

शब्दार्थ :-

तह=उस प्रकार	**बन्धुदओ=**बंध-उदय
थुणिमो=स्तुति करते हैं	**उदीरणया=**उदीरणा
वीरजिणं=वीर प्रभु की	**सत्ता=**सत्ता
जह=जिस प्रकार	**पत्ताणि=**प्राप्त हुए
गुणठाणेसु=गुणस्थानकों में	**खविआणि=**क्षय किए हैं
सयल कम्माइं=सभी कर्म	

भावार्थ :- जिस प्रकार वीर प्रभु ने गुणस्थानकों में बंध उदय उदीरणा और सत्ता को प्राप्त सभी कर्मों को नष्ट किया है, उस प्रकार से हम वीर प्रभु की स्तुति करते हैं ।

विवेचन :- यह संसार अनादिकाल से है । इस संसार में आत्मा का अस्तित्व भी अनादिकाल से है । इस अनादि संसार में आत्मा और कर्म का संयोग भी अनादिकाल से है ।

आत्मा और कर्म के इस संयोग को चर्म चक्षु द्वारा प्रत्यक्ष देख नहीं सकते हैं ।

शंका– जब आत्मा और कर्म के संयोग को हम देख ही नहीं सकते हैं तो उस कर्म के संयोग को दूर हटाने का पुरुषार्थ तो कैसे कर सकते हैं ?

समाधान– केवलज्ञान के बिना आत्मा और कर्म के इस संयोग को प्रत्यक्ष देखना संभव नहीं है । तारक तीर्थंकर श्री महावीर प्रभु ने अपने केवलज्ञान के बल से आत्मा और कर्म के संयोग को प्रत्यक्ष देखा और उस संयोग को दूर करने का उपाय भी देखा ।

प्रभु ने आत्मा और कर्म के संयोग को मात्र देखा ही नही, परंतु करुणानिधान उन प्रभु ने कर्म का वह स्वरूप जगत् के जीवों को भी बतलाया ।

कर्म के स्वरूप को जानने के बाद उस कर्म से किस प्रकार मुक्ति हो, वह उपाय भी प्रभु ने बतलाया ।

परमोपकारी **पू. आ. श्री देवेन्द्रसूरिजी म.** ने प्रभु के बताए हुए कर्म के स्वरूप को प्रथम कर्मग्रंथ **'कर्मविपाक'** के रूप में गूँथा तो उसके बाद उन कर्मों का किस प्रकार क्षय किया जा सके, वैसा उपाय भी उन्होंने इस **'कर्म स्तव'** नाम के दूसरे कर्मग्रंथ के माध्यम से बतला दिया है ।

प्रभु में रहे असाधारण गुणों के कथन को **स्तुति** कहते हैं ।

प्रभु की स्तुति चार प्रकार से हो सकती है–

(1) प्रभु में रहे अजोड़ क्षमा आदि गुणों का कथन करना ।

(2) प्रभु के अलौकिक चरित्र का वर्णन करना ।

(3) प्रभु के द्वारा बताए हुए अलौकिक तत्त्वों का प्रकाशन करना ।

(4) प्रभु के बताए हुए सिद्धान्त और साधना मार्ग को, स्तुति के रूप में गूँथना ।

प्रस्तुत **'कर्म स्तव'** नाम के ग्रंथ में ग्रंथकार श्री ने प्रभु के उस साधना मार्ग का वर्णन किया है, जिस साधना मार्ग से आत्मा पर लगे हुए समस्त कर्मों का उन्होंने क्षय किया था ।

1) मंगल :- ग्रंथ के प्रारंभ में मंगल किया जाता है । प्रस्तुत ग्रंथ में **थुणिमो वीर जिणं** 'अर्थात् वीर भगवान की हम स्तुति करते हैं' कहकर मंगल किया गया है । मंगल से विघ्नों का उपशमन होता है ।

2) अभिधेय :- प्रस्तुत ग्रंथ में गुणस्थानकों में कर्म के बंध, उदय, उदीरणा और सत्ता का स्वरूप समझाया गया है ।

3) प्रयोजन :- प्रस्तुत ग्रंथ का प्रयोजन पदार्थ का बोध है । गुणस्थानकों में कर्म के बंध आदि पदार्थों का बोध यह प्रस्तुत ग्रंथ का अनंतर प्रयोजन है, और परंपरा से ग्रंथ का प्रयोजन सकल कर्म से मुक्ति अर्थात् मोक्ष पद की प्राप्ति करना है ।

4) सम्बन्ध :- जिस प्रकार घट शब्द और घट वस्तु के बीच वाच्य-वाचक संबंध है, उसी प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ से गुणस्थानकों में कर्मबंध आदि पदार्थों का बोध होता है । अतः प्रस्तुत ग्रंथ और उससे वाच्य पदार्थों के बीच वाच्य–वाचक भाव संबंध है ।

5) अधिकारी :- मुमुक्षु आत्मा ही इस ग्रंथ को पढ़ने का अधिकारी है ।

जब तक आत्मा संसार में परिभ्रमण करती रहती है, तब तक आत्मा नवीन कर्मों का बंध करती है । आत्मा का संसार-परिभ्रमण कर्म को ही आभारी

है । जिस कर्म का बंध होता है, उस कर्म का तो समय बीतने पर उदय भी अवश्य होता है । अतः बंध के बाद उदय को जानना भी जरूरी है ।

प्रस्तुत ग्रंथ में कर्म के बंधादि का वर्णन है-

1) बंध :- मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग रूप हेतुओं को प्राप्तकर आत्मा कार्मण वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करती है । वे कर्म पुद्गल आत्मा के साथ दुध में पानी की भाँति एकमेक हो जाते हैं । आत्मा के साथ कर्मों के इस प्रकार जुड़ने की प्रक्रिया को बंध कहते हैं ।

2) उदय :- आत्मा के साथ बँधा हुआ कर्म, आबाधा काल व्यतीत होने पर अपना शुभ-अशुभ फल अवश्य प्रदान करता है । उदयावस्था में प्राप्तकर्म ही अपना फल प्रदान करता है ।

बँधा हुआ कर्म जब तक आत्मा को अपना शुभ-अशुभ फल प्रदान नहीं करता है, उस काल को आबाधा काल कहते हैं ।

आबाधा काल व्यतीत होने पर ही कोई भी कर्म अपना फल देने में समर्थ बनता है । जिस काल में आत्मा कर्म के फल का अनुभव करती है, उसे कर्म का उदय काल कहते हैं ।

3) उदीरणा :- उदय काल प्राप्त न होने पर भी प्रयत्न विशेष से कर्मों को उदय में लाना, उसे उदीरणा कहते हैं । आबाधा काल व्यतीत होने पर जो कर्म बाद में उदय में आनेवाले हों, उन्हें प्रयत्न विशेष से उदयावलि में लाकर उदय प्राप्त दलिकों के साथ भोग लेना, उसे उदीरणा कहते हैं ।

4) सत्ता :- बँधे हुए कर्म जब तक आत्मा के साथ लगे रहते हैं, उसे सत्ता कहते हैं ।

सामान्यतया जिस कर्म का बंध हो, उसी की सत्ता मानी जाती है, परंतु मोहनीय कर्म की उत्तर प्रकृति रूप मिश्र मोहनीय और समकित मोहनीय– ऐसी दो प्रकृतियाँ हैं, जिनका स्वतंत्र रूप से बंध नहीं होने पर भी उनकी सत्ता को स्वीकार किया गया है ।

बँधे हुए मिथ्यात्व मोहनीय कर्म में ही जब फल देने की शक्ति कम हो जाती है और उनके कर्माणु अर्द्ध रस वाले और नीरस प्रायः हो जाते हैं तभी वे कर्माणु मिश्र मोहनीय और समकित मोहनीय कहलाते है । मिश्र मोहनीय और समकित मोहनीय का बंध नहीं होने पर भी उनकी सत्ता होती है ।

बंध,उदय,उदीरणा और सत्ता में रहे कर्मों का प्रभु ने क्षण मात्र में ही

क्षय नहीं कर दिया था, परंतु आत्मा के विकास की उन-उन भूमिकाओं को गुणस्थानकों को प्राप्तकर कर्मों का क्षय किया था ।

अतः ग्रंथकारश्री ने गुणस्थानक के अनुसार हुए प्रभु के क्रमिक विकास को सिद्धांत और साधना मार्ग के माध्यम से बताते हुए स्तुति स्वरुप इस कर्मस्तव की रचना की है ।

आओ ! प्रभु के आत्मिक विकास को चौदह गुणस्थानक के माध्यम से जानकर हम भी इस मार्ग का अनुसरण करने के लिए प्रयत्नशील बने !

5 चौदह-गुणस्थानक

मिच्छे सासण मीसे अविरयदेसे पमत्त अपमत्ते ।
निअट्टि अनिअट्टि सुहुमवसम खीण सजोगि अजोगि गुणा ।।2।।

शब्दार्थ :-

मिच्छे=मिथ्यात्व	**अनिअट्टि=**अनिवृत्तिकरण
सासण=सास्वादन	**सुहुम=**सूक्ष्म संपराय
मीसे=मिश्र	**उवसम=**उपशांतमोह
अविरय=अविरत सम्यग्दृष्टि	**खीण=**क्षीणमोह
देसे=देशविरत	**सजोगि=**सयोगी केवली
पमत्त=प्रमत्त संयत	**अजोगि=**अयोगी केवली
अपमत्ते=अप्रमत्त संयत	**गुणा=**गुणस्थानक
निअट्टि=निवृत्ति (अपूर्वकरण)	

भावार्थ :- 1. मिथ्यात्व 2. सास्वादन 3. मिश्र 4. अविरत सम्यग्दृष्टि 5. देशविरत 6. प्रमत्तसंयत 7. अप्रमत्तसंयत 8. अपूर्वकरण 9. अनिवृत्तिकरण 10. सूक्ष्म संपराय 11. उपशांतमोह 12. क्षीणमोह 13. सयोगी केवली 14. अयोगी केवली ये चौदह गुणस्थानक है ।

विवेचन :- आत्मा के ज्ञानादि गुणों का न्युनाधिक अंश में प्रकट होना, उसे गुणस्थानक कहते हैं ।

सूक्ष्म दृष्टि से आत्मा के ज्ञानादि गुणों के विकास की असंख्य स्थितियाँ होने से गुणस्थानकों के प्रकार भी असंख्य हो जाते हैं, परंतु महापुरुषों ने

मिथ्यात्व आदि कार्यों की अपेक्षा से उन सभी का 14 भागों में विभाग किये होने से आत्मा के विकास के 14 गुणस्थानक हैं ।

यद्यपि गुणस्थानकों के विकास में मुख्य आधार मोहनीय कर्म के क्षय, उपशम और क्षयोपशम का है, इसीलिए अभव्य आत्मा को साढ़े नौ पूर्व के ज्ञान का क्षयोपशम हो जाने पर भी उस आत्मा का गुणस्थानक पहला ही होता है, जब कि माषतुष जैसे मुनि को ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम अल्प होने पर भी मोहनीय कर्म के क्षयोपशम, क्षय आदि के कारण वे चौथे आदि गुणस्थानकों को पारकर मोक्ष में चले गए थे ।

1) मिथ्यात्व गुणस्थानक

आत्मा के विकास की जो 14 सीढ़ियाँ हैं, उनमें पहली सीढ़ी का नाम मिथ्यात्व गुणस्थानक है । मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय के कारण जिस जीव की दृष्टि मिथ्या अर्थात् विपरीत होती है, उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं ।

धतूरे के बीज खाने पर सफेद वस्तु भी पीली दिखाई देती है, उसी प्रकार मिथ्यात्व के उदय से आत्मा कुदेव को देव, कुगुरु को गुरु और कुधर्म को धर्म समझती है । पित्तज्वर के रोगी को मीठी वस्तु भी कडवी लगती है, उसी प्रकार मिथ्यात्व से ग्रस्त व्यक्ति को सच्चा धर्म भी अच्छा नहीं लगता है ।

इस गुणस्थानक के भी दो भेद हैं ।

(क.) गाढ़ मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक :- जिस आत्मा का संसार परिभ्रमण एक पुद्गल परावर्त काल (अनंत कालचक्र) से अधिक हो वह आत्मा अचरमावर्ती कहलाती है । उस अचरमावर्ती आत्मा का मिथ्यात्व अत्यंत ही गाढ़ होता है । उस आत्मा में मोक्ष और मोक्ष के साधनों के प्रति तीव्र द्वेष-भाव रहा हुआ होता है ।

अभव्य आत्मा का मिथ्यात्व हमेशा गाढ़ होता है, क्योंकि वह आत्मा कभी भी चरमावर्त में प्रवेश ही नहीं करती है ।

आत्मा का विकास : व्यवहार राशि में आई आत्मा का ही विकास हो सकता है, अतः जो आत्मा भव्य होने पर भी सदा काल अव्यवहार राशि में ही रहनेवाली है अर्थात् जो जातिभव्य कहलाती हैं, वे भी अचरमावर्ती ही होती हैं ।

अव्यवहार राशि में भव्य, अभव्य और जातिभव्य तीनों प्रकार के जीव होते हैं, परंतु जाति भव्य जीव अव्यवहार राशि में से कभी बाहर नहीं निकलते हैं, अतः उनका मोक्ष कदापि संभव नहीं है ।

अचरमावर्त में रही हुई आत्मा भवाभिनंदी होती है अर्थात् उसे संसार और संसार के सुख ही पसंद होते हैं ।

अचरमावर्त में रही आत्मा का कोई विकास नहीं होता है, उसके विकास के द्वार बंद ही होते हैं । वह आत्मा व्यवहार से चारित्र धर्म को स्वीकार भी करेगी तो भी उस आत्मा में मोक्ष के प्रति कोई अनुराग नहीं होगा ।

(ख.) मंद मिथ्यादृष्टि :- अचरमावर्त में रही आत्मा गाढ़ मिथ्यादृष्टि होती है, परंतु समय बीतने पर जब आत्मा चरमावर्त में प्रवेश करती है, तब उसका मिथ्यात्व मंद होने लगता है ।

चरमावर्त में प्रवेश के बाद ही आत्मा की विकास यात्रा का प्रारम्भ होता है । आत्मा में मोक्ष के प्रति अद्वेष आदि गुणों का प्रादुर्भाव होने लगता है ।

नदी-घोल-पाषाण न्याय से गाढ़ मिथ्यादृष्टि और मंद मिथ्यादृष्टि आत्माएँ अनंती बार ग्रंथिदेश को प्राप्त करती हैं, परंतु गाढ़ मिथ्यादृष्टि आत्मा पुनः संक्लेशग्रस्त बनकर मोहनीय कर्म की स्थिति को बढ़ा लेती है, परंतु मंद मिथ्यादृष्टि जीव अपने अध्यवसायों की विशुद्धि द्वारा ग्रंथिदेश के निकट आने के बाद ग्रंथिभेद करने के लिए तैयार हो जाती है ।

जो आत्मा ग्रंथिदेश के निकट आने के बाद अवश्य ग्रंथिभेद करती है, उस आत्मा का वह यथाप्रवृत्तिकरण, चरम यथाप्रवृत्तिकरण कहलाता है और जो आत्माएँ ग्रंथिभेद नहीं कर पाती हैं, वे आत्माएँ चरम यथाप्रवृत्तिकरण नहीं कर पाती हैं ।

काल की अपेक्षा मिथ्यात्व के तीन भेद :-

1. अनादि-अनंत:- अभव्य जीव अनादि काल से मिथ्यादृष्टि है और अनंत काल तक मिथ्यादृष्टि रहेगा, अतः उसका मिथ्यात्व अनादि-अनंत है ।

2. अनादि-सांत :- भव्य जीव का मिथ्यात्व अनादिकाल से होने पर भी सम्यक्त्व प्राप्ति के बाद उस मिथ्यात्व का अंत आ जाता है, अतः भव्य जीव का मिथ्यात्व अनादि-सांत है ।

3. सादि-सांत :- सम्यक्त्व से पतित होकर जिस आत्मा ने मिथ्यात्व प्राप्त किया है, वह आत्मा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से अर्ध-पुद्गल-परावर्त-काल के बाद अवश्य ही सम्यक्त्व प्राप्त करती है, अतः उसका मिथ्यात्व सादि-सांत है ।

मिथ्यात्व के अन्य 5 प्रकार :-

1. आभिग्रहिक मिथ्यात्व :- धर्मशास्त्र की परीक्षा किए बिना **``मैं जो धर्म करता हूँ वही सच्चा है, बाकी सब झूठे हैं''**- इस प्रकार धर्म के झूठे आग्रह को आभिग्रहिक मिथ्यात्व कहते हैं ।

2. अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व :- धर्मशास्त्र की परीक्षा करने में असमर्थ मंद बुद्धिवाले जीवों की **'सभी धर्म समान हैं'**- ऐसी मान्यता को अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व कहते हैं ।

3. आभिनिवेशिक मिथ्यात्व :- स्वयं को मान्य सिद्धांत असत्य जानने पर भी जमालि आदि की तरह अहंकार आदि के कारण अपने मत की गहरी पकड़ को आभिनिवेशिक मिथ्यात्व कहते हैं ।

4. सांशयिक मिथ्यात्व :- सर्वज्ञ के वचन सत्य हैं या झूठे ?– इस प्रकार शंका करना, उसे सांशयिक मिथ्यात्व कहते हैं ।

5. अनाभोगिक मिथ्यात्व :- अज्ञानता आदि के कारण वीतराग देव आदि पर श्रद्धा के अभाव को अनाभोगिक मिथ्यात्व कहते हैं ।

एकेन्द्रियादि जीवों का मिथ्यात्व अनाभोगिक होता है ।

2) सास्वादन गुणस्थानक

किसी भी क्षेत्र में पहले बाद दूसरा-तीसरा स्थान प्रगति का ही होता है, परंतु गुणस्थानक के विषय में ऐसा नहीं है । दूसरा गुणस्थानक प्रगति का नहीं बल्कि पतन का है ।

पहले गुणस्थानक में रही आत्मा दूसरे गुणस्थानक में नहीं जाती है, बल्कि चौथे गुणस्थानक से गिरने वाली आत्मा ही दूसरे गुणस्थानक का स्पर्श करती है ।

उपशम सम्यग्दृष्टि जीव को अनंतानुबंधी कषाय का उदय होने पर जब वह आत्मा सम्यग्दर्शन से च्युत होती है तब, जब तक वह मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं करती है, तब तक बीच में वह सास्वादन गुणस्थानक में होती है ।

इस गुणस्थानक का काल एक समय से लेकर छह आवलिका तक है ।

यह गुणस्थानक उपशमश्रेणी अथवा उपशम सम्यक्त्व से गिरे हुए जीव को ही होता है ।

कोई भी जीव इस भवचक्र में अधिक से अधिक चार बार उपशम श्रेणी पर चढ़ सकता है, अतः उपशम श्रेणी से गिरते समय मिथ्यात्व को पाने के पहले चार बार और उपशम सम्यक्त्व से गिरते समय एक बार, इस प्रकार कुल पाँच बार सास्वादन गुणस्थानक प्राप्त कर सकता है ।

6 सम्यक्त्व और ग्रन्थिभेद की प्रक्रिया

1) अंतर करण के बाद जीव के निर्मल परिणाम से शुद्ध पुंज के उदय से क्षयोपशमिक समकित गुणस्थानक-4 की प्राप्ति ।
2) किसी जीव का मध्यस्थ परिणाम होने पर मिश्रमोहनीय के अर्ध शुद्ध पुंज के उदय से मिश्र गुणस्थानक-3 की प्राप्ति ।
3) किसी जीव के कलुषित परिणाम से अशुद्ध पुंज के उदय से मिथ्यात्व गुणस्थानक-1 की प्राप्ति ।

• त्रिपुंजीकरण प्रक्रिया का प्रारंभ काल
• अपूर्व आत्मानंद की अनुभूति

• अंतरकरण के अंतर्मुहुर्त की अंतिम 6 आवलिका या जघन्य से एक समय बाकी रहने से किसी मंद परिणामी जीव को अनंतानुबंधी का उदय होने से दूसरा सास्वादन गुणस्थानक प्राप्त करवे अन्तरकरण के बाद मिथ्यात्व को प्राप्त करता है ।

• अंतरकरण काल में अंतर स्थिति गत दलिकों की उपर और नीचे की स्थिति में डालकर संपूर्ण खाली करे ।

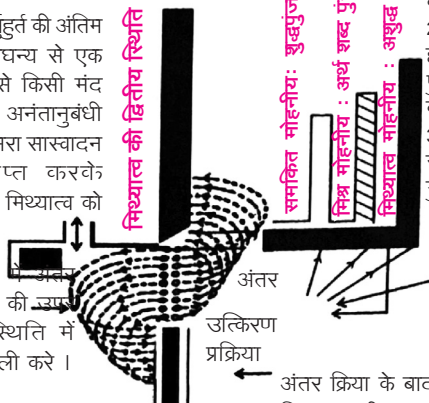

अंतर क्रिया के बाद मिथ्यात्व की प्रथम स्थिति

उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के साथ कोई जीवको
• देशविरति - 5 वां गुण
• सर्वविरति - 6 ठां गुण
• अप्रमत्त - 7 वां गुण
की स्पर्शना होती है ।

• अनिवृत्तिकरण का संख्यातवाँ भाग
• अंतरकरण क्रिया काल संख्यात

संख्यात बहुभाग
• प्रति समय अध्यवसाय की अनंत गुणविशुद्धि
अनिवृत्तिकरण में प्रवेश

एक साथ प्रवेशक जीवों का समान अध्यवसाय-
अनिवृत्ति ४ अपूर्व
१ अपूर्व स्थिति-बंध
२ अपूर्व रसबंध
३ अपूर्व स्थितिघात
४ अपूर्व गुणश्रेणि

अपूर्वकरण में प्रवेश

विशुद्ध यथा प्रवृत्तिकरण
• तीव्र संवेग-निर्वेद से ग्रंथिभेद
• भव्य जीवका चरमावर्त में प्रवेश

ग्रन्थि देश

निबीड राग द्वेष की गूढ-घन-ग्रंथि

• अर्ध पुद्गल परावर्त काल से अधिक संसार भ्रमण नहीं ।

यथा प्रवृत्तिकरण से भव्य, अभव्य, दुर्भव्य जीव, कर्म की लघुता से अनंती बार ग्रंथी देश पर आकर अपूर्वकरण की विशुद्धि के अभाव से वापस लौटते है ।

चरमावर्ते हो चरमकरणे तथा भवपरिणति परिपाक, दोष टळे वली दृष्टि खुले भली, प्राप्ति प्रवचन वाक् ।।

संसार के सुख प्रति तीव्र राग

• नदी-घोल पाषाण न्याय से अनंत यथा प्रवृत्तिकरण के द्वारा आयुष्य कर्म के सिवाय सात कर्मों की स्थिति एक कोडा कोडी सागरोपम में पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग न्युन करे अर्थात् अंत:कोडा कोडी सागरोपम बनाए ।

• गाढ मिथ्यात्व के योग से जीव का संसार में परिभ्रमण
• 84 लाख योनि में
• 14 राजलोक में
• 4 गतियों में अनंत जन्म मरण की परंपरा

• गाढ मिथ्यात्वी 70 कोडा कोडी मिथ्यात्व की स्थिति का बार बार बांधे ।
• भविष्य में मात्र दो बार बांधे वह द्विबंधक, एक बार बांधे वह, सुकृत्बंधक और न बांधे वह अपुनर्बंधक !

('जैन तत्त्वज्ञान चित्रावली प्रकाश' पुस्तक से साभार ।)

7 उपशम सम्यक्त्व का स्वरूप

अनादि मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथम बार सम्यक्त्व प्राप्त करता है, तब सर्वप्रथम अपने कर्मों की स्थिति को कम करता है। सम्यक्त्व-प्राप्ति के पूर्व आत्मा तीन करण करती है।

(1) यथाप्रवृत्ति-करण :- सभी कर्मों की स्थिति को घटा कर उसे अंतः कोटा-कोटि सागरोपम जितनी बना देती है, उसे यथा प्रवृत्तिकरण कहते है।

पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग न्यून ऐसी एक कोटाकोटि सागरोपम की स्थिति को अंतः कोटा-कोटि सागरोपम कहते हैं।

कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार है–

1) मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 70 कोडाकोडी सागरोपम है।

2) नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 20 कोडाकोडी सागरोपम है।

3) ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अंतराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 30 कोटाकोटि सागरोपम है।

4) आयुष्य कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 33 सागरोपम है।

अनादि काल से आत्मा में राग-द्वेष के गाढ अध्यवसाय रूप ग्रंथि (गाँठ) रही हुई है। यह ग्रंथि अत्यंत ही दुर्भेद्य है।

तथाभव्यत्व के योग से आत्मा जब कर्मों की स्थिति को अंतः कोटाकोटि सागरोपम जितनी बना देती है, उस स्थिति को ग्रंथिदेश कहते है।

अचरमावर्त में रही भव्य और अभव्य आत्मा तथा चरमावर्त में रही भव्य आत्मा भी अनंती बार ग्रंथिदेश पर आती हैं, परंतु पुनःसंक्लेशजन्य परिणाम आने से कर्मों की स्थिति को बढ़ा देती है। इस प्रकार आत्मा का पुरुषार्थ निष्फल जाता है।

(2) अपूर्वकरण :- अनादि इस संसार में पहले कभी भी प्राप्त नहीं हुए विशुद्ध अध्यवसायों को आत्मा प्राप्त करती है, उसे अपूर्वकरण कहते हैं।

इस अपूर्वकरण के प्रथम समय से ही आत्मा **स्थितिघात, रसघात, गुणश्रेणी और अपूर्व स्थिति बंध** को प्रारंभ करती है।

1. स्थितिघात :- ज्ञानावरणीय आदि कर्मों की जो स्थिति है, उसमें जघन्य से पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग और उत्कृष्ट से सैकड़ों सागरोपम की स्थिति को खत्म करना, उसे स्थितिघात कहते हैं।

2. रसघात :- कषाय और लेश्या के द्वारा कर्म-परमाणुओं में शुभ-अशुभ फल देने की जो शक्ति पैदा की जाती है, उसे रस कहते हैं । अपवर्तनाकरण द्वारा उस अशुभ प्रकृति के रस को नष्ट करना, उसे रसघात कहते हैं ।

3. गुणश्रेणी :- गुणश्रेणी द्वारा जीव असंख्यात गुणाकार कर्म दलिकों को भोग कर नष्ट कर देता है, जिसके फलस्वरूप जीव लघुकर्मी बनता है ।

4. अपूर्व स्थिति बंध :- शुभ अध्यवसायों के द्वारा आत्मा के पहले के स्थितिबंध की अपेक्षा नया-नया स्थितिबंध पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितने कम-कम होते जाते हैं ।

पहले कभी नहीं हुए ऐसे अल्प स्थितिबंध को अपूर्व स्थितिबंध कहते हैं ।

अपूर्वकरण के प्रथम समय से स्थितिघात और अपूर्व स्थितिबंध दोनों का प्रारंभ एक साथ होता है और एक साथ पूर्ण होता है, अतः दोनों का अन्तर्मुहूर्त एक समान है ।

इस प्रकार अपूर्वकरण के प्रथम समय से स्थितिघात आदि चारों वस्तुओं का एक साथ प्रारंभ होता है, उसके साथ ही ग्रंथिभेद की प्रक्रिया चालू हो जाती है ।

उसके बाद अनादिकालीन राग-द्वेष के तीव्र परिणाम रूप दुर्भेद्य ऐसी गाँठ को भेदकर आत्मा अनिवृत्तिकरण में प्रवेश करती है ।

(3) अनिवृत्तिकरण :- एक साथ ग्रंथिभेद करनेवाले सभी जीवों के अध्यवसाय एक समान हो जाते हैं । अनिवृत्तिकरण के अन्तर्मुहूर्त में से बहुत से संख्याता भाग जाने पर जब एक संख्याता भाग बाकी रहता है, तब जीव अंतरकरण करता है ।

अंतरकरण अर्थात् खाली करने की प्रक्रिया । उस समय मिथ्यात्व मोहनीय कर्म की स्थिति दो भागों में विभक्त हो जाती है । नीचे के भाग को प्रथम स्थिति और ऊपर के भाग को द्वितीय स्थिति कहते हैं । उन दोनों के बीच में मिथ्यात्व के दलिक रहित की शुद्ध स्थिति बनती है, उसे **उपशम अद्धा** कहते हैं ।

प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और द्वितीय स्थिति अंतः कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण होती है ।

अंतरकरण के बाद जीव प्रथम स्थिति में रहे मिथ्यात्व के कर्म-दलिकों को विपाकोदय द्वारा भोगकर नष्ट करता है और द्वितीय स्थिति में रहे कर्मदलिकों को उपशांत करता रहता है ।

जब प्रथम स्थिति के कर्म दलिक नष्ट हो जाते हैं, तब मिथ्यात्व मोहनीय का बंध और उदय रुक जाता है और दूसरी स्थिति में रहे कर्म दलिक उपशांत हो जाते हैं । **उसी समय जीव उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है ।**

उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय जीव, जन्मांध व्यक्ति को आँखों की प्राप्ति से भी अधिक आनंद का अनुभव करता है ।

सास्वादन सम्यक्त्वः– उपशम सम्यक्त्व का काल जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से छह आवलिका जितना बाकी हो तब अनंतानुबंधी कषाय का उदय हो जाय, तो उपशम सम्यक्त्व से गिरता हुआ सास्वादन सम्यक्त्व प्राप्त करता है, वहाँ से आत्मा अवश्य ही मिथ्यात्व को प्राप्त करती है ।

3) मिश्र गुणस्थानक

यह गुणस्थानक भी चढ़ने का गुणस्थानक नहीं है, बल्कि चौथे गुणस्थानक से च्युत हुई आत्मा को ही यह मिश्र गुणस्थानक होता है ।

मिश्र अर्थात् न सम्यग्दृष्टि है और न मिथ्यादृष्टि है ।

जिस प्रकार दही और शक्कर के मिश्रण से बने श्रीखंड में न तो सिर्फ दही का स्वाद होता है और न ही सिर्फ शक्कर का । उसी प्रकार मिश्र मोहनीय कर्म के उदय से न तो सम्यक्त्व की शुद्धि का अनुभव होता है और न ही मिथ्यात्व की मलिनता का ।

जिस प्रकार नालियर द्वीप में रहा मनुष्य जिसने आजतक सिर्फ नालियर के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं खाया है, उसको न चावल पर राग होता है और न ही चावल पर द्वेष ! बस, इसी प्रकार इस गुणस्थानक में रही आत्मा को सर्वज्ञ भगवंत के वचन पर न तो राग होता है और न ही द्वेष ।

मिश्रगुणस्थानक का काल एक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है, अन्तर्मुहूर्त के बाद या तो आत्मा अशुद्ध अध्यवसायों को प्राप्तकर मिथ्यादृष्टि नाम के पहले गुणस्थानक में जाती है अथवा विशुद्ध अध्यवसायों द्वारा चौथे गुणस्थानक को प्राप्त करती है ।

इस गुणस्थानक में रही आत्मा परलोक संबंधी आयुष्य का बंध नहीं करती है ।

इस गुणस्थानक में रही आत्मा की मृत्यु भी नहीं होती है । एवं मारणांतिक समुद्घात नहीं होता है ।

इस गुणस्थानक में रही आत्मा संयम या देशसंयम को ग्रहण नहीं करती है ।

4) अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक

हिंसा आदि पापत्याग के परिणाम (अध्यवसाय) को विरति कहते हैं और उन पापों के त्याग के अभाव को अविरति कहते हैं ।

चौथे गुणस्थानक में रही आत्मा में विरति के परिणाम का अभाव होने के कारण इस गुणस्थानक को अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक कहते हैं ।

इस गुणस्थानक में अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय होता है । इस गुणस्थानक में रही आत्मा को जिनेश्वर भगवंत के वचन पर पूर्ण और दृढ़ श्रद्धा होती है ।

'तमेव सच्चं निसंकं जं जिणेहिं पवेइयं-' जो जिनेश्वर ने कहा है, वह सत्य और निःशंक है, ऐसी दृढ़ श्रद्धा सम्यग्दृष्टि को होती है ।

विरति का यथार्थ बोध होने पर भी इस गुणस्थानक में पाप के त्याग का अभाव होता है । इस गुणस्थानक में रही आत्मा को संसार भयंकर कैद jail समान लगता है ।

सम्यग्दृष्टि का शरीर सांसारिक प्रवृत्तियों में जुड़ा होने पर भी उसका मन तो मोक्ष में और मोक्षसाधक देव-गुरु-धर्म की प्रवृत्ति में ही रमण करता है ।

जीवन-निर्वाह के लिए हिंसा आदि पापप्रवृत्ति करने पर भी **'तप्तलोह-पद न्यासं'** अर्थात् तपे हुए लोहे के तवे पर पैर रखने की भाँति दुःखी हृदय से करता है ।

हाथ-पैर में बेड़ी वाले भूखे व्यक्ति को थाल में पिरसे स्वादिष्ट भोजन को खाने की तीव्र इच्छा होती है, परंतु खा नहीं सकता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को विरति पाने की तीव्र अभिलाषा होने पर भी अप्रत्याख्यानावरण कषायों के उदय के कारण लेश भी पापत्याग नहीं कर पाता है, इसका उसके हृदय में अत्यंत दुःख होता है ।

पहले के तीन गुणस्थानकों की अपेक्षा इस गुणस्थान में अध्यवसायों की विशुद्धि अनंतगुणी होती है ।

सर्व प्रथम बार कौनसा सम्यक्त्व ?

कर्म ग्रंथ के मत से अनादि मिथ्यादृष्टि सर्वप्रथम बार उपशम सम्यक्त्व ही प्राप्त करता है, जबकि **सिद्धांत** के मत से अनादि मिथ्यादृष्टि जीव सर्वप्रथम बार उपशम अथवा क्षयोपशम सम्यक्त्व में से कोई भी प्राप्त कर सकता है ।

(1) सिद्धांत के मत से जब अनादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है, तब यथाप्रवृत्त करण आदि तीन करण कर उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है । इस स्थिति में रहे मिथ्यात्व के कर्मदलिकों के तीन पुंज नहीं करता है, अतः उपशम सम्यक्त्व का काल पूरा होने पर वह आत्मा अवश्य मिथ्यात्व गुणस्थानक को प्राप्त करती है ।

(2) अनादि मिथ्यादृष्टि जीव क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है, तब अपूर्वकरण के द्वारा ग्रंथिभेद करके, ऊपर मिथ्यात्व की अंतःकोडाकोडी सागरोपम प्रमाण स्थिति में रहे मिथ्यात्व के कर्मदलिकों के तीन पुंज करता है । अपूर्वकरण के बाद जब शुभ पुंज का उदय होता है, तब जीव क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है ।

सम्यक्त्व के 5 लक्षण :-

मिथ्यात्व के क्षय, उपशम या क्षयोपशम को चर्म-चक्षु द्वारा देख नहीं सकते हैं, परंतु निम्न लिखित लक्षणों से अनुमान कर सकते हैं ।

(1) शम :- अनंतानुबंधी कषाय का अभाव ।

(2) संवेग :- मोक्षसुख की तीव्र अभिलाषा ।

(3) निर्वेद :- संसार के सुखों के प्रति वैराग्य भाव ।

(4) अनुकंपा :- दुःखी प्राणियों को देख हृदय द्रवित हो जाना ।

(5) आस्तिक्य :- वीतराग के वचनों पर अविचल श्रद्धा ।

सम्यक्त्व के भेद :-

(1) निसर्ग और अधिगम सम्यक्त्व :- गुरु के उपदेश, जिनबिंब आदि बाह्य आलंबन के बिना ही तथाभव्यत्व के परिपाक से जो सम्यक्त्व प्राप्त होता है, वह **निसर्ग सम्यक्त्व** कहलाता है- और गुरु के उपदेश आदि बाह्य निमित्तों को पाकर जो सम्यक्त्व होता है, वह **अधिगम सम्यक्त्व** कहलाता है ।

(2) निश्चय और व्यवहार सम्यक्त्व :- सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र की रमणता पूर्वक आत्म परिणाम को निश्चय सम्यक्त्व कहते हैं और सुदेव आदि को मानना एवं कुदेव आदि को नहीं मानना, यह व्यवहार सम्यक्त्व है ।

(3) क्षायिक, क्षायोपशमिक और औपशमिक सम्यक्त्व :- अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ (अनंतानुबंधी चतुष्क) तथा समकित मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय आदि सात प्रकृतियों (दर्शन सप्तक) के क्षय से प्राप्त सम्यक्त्व क्षायिक सम्यक्त्व कहलाता हैं ।

उदयावलिका में प्राप्त मिथ्यात्व मोहनीय आदि प्रकृतियों के क्षय और अनुदय में रही प्रकृतियों के उपशम से प्राप्त सम्यक्त्व को क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं ।

दर्शन सप्तक के उपशमन से प्राप्त सम्यक्त्व को औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं ।

अनादि मिथ्यादृष्टि जीव ग्रंथिभेद–जन्य सम्यक्त्व प्राप्त करता है, तब अध्यवसायों की विशुद्धि हो तो देशविरति और सर्वविरति भी प्राप्त कर सकता है, अतः यह सम्यक्त्व 4 से 7 गुणस्थानक तक होता है ।

उपशमश्रेणी में 8 से 11 गुणस्थानक तक उपशम सम्यक्त्व होता है ।

चारों गति के संज्ञी जीव उपशम और क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं, परंतु क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति का प्रारंभ साधिक आठ वर्ष की उम्र वाला पहले संघयणवाला क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य ही कर सकता है ।

अबद्ध आयुष्यवाले क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव ने तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित नहीं किया हो तो वह उसी भव में मोक्ष में जाता है ।

बद्ध आयुष्यवाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव अधिकतम तीन या चार भव करता है । क्षायिक सम्यक्त्व का काल सादि-अनंत है । क्षायिक सम्यग्दृष्टि साधिक 33 सागरोपम तक संसार में रहकर अवश्य मोक्ष में जाता है ।

क्षयोपशम सम्यक्त्व साधिक 66 सागरोपम तक रह सकता है ।

उपशम सम्यक्त्व का काल अन्तर्मुहूर्त ही है ।

एक जीव को भवचक्र में क्षायिक सम्यक्त्व एक बार, औपशमिक और सास्वादन सम्यक्त्व 5 बार और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व असंख्य बार प्राप्त हो सकता है ।

5) देशविरत गुणस्थानक

प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय होने से जो जीव पाप प्रवृत्तियों का सर्वथा त्याग तो नहीं कर सकते, परंतु जो पापों के आंशिक त्याग की प्रतिज्ञा लेते हैं, वे देशविरत श्रावक कहलाते है ।

इस गुणस्थानक में रही आत्मा सम्यक्त्व से युक्त होती है अर्थात् जिनेश्वर के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा रखती है । त्रसादि जीवों की हिंसा का त्याग करती है ।

श्रावक जीवन के अलंकार स्वरूप बारह व्रत हैं । इस गुणस्थानक में रही आत्मा एक दो से लेकर यावत् बारह व्रतों का स्वीकार करती है ।

कई श्रावक, श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का भी स्वीकार करते हैं ।

देशविरतिधर श्रावक को सर्वविरति चारित्र स्वीकार की तीव्र अभिलाषा होती है । प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय होने से वह आत्मा सर्वविरति को स्वीकार नहीं कर पाती है, फिर भी आंशिक त्याग से आगे बढ़कर संवास अनुमति सिवाय के सभी पापों का त्याग कर सकती है ।

अनुमति के तीन प्रकार हैं-

(1) प्रतिसेवन अनुमति :- अपने या दूसरे के किये भोजन का उपयोग करता है, जो स्वयं या स्वजन के पाप-कार्यों की अनुमोदना करता है, वह प्रतिसेवन अनुमति है ।

(2) प्रतिश्रवण अनुमति :- जो पुत्र आदि के पापकार्यों को सुनता है और अनुमोदन करता है परंतु निषेध नहीं करता है, वह प्रतिश्रवण अनुमति है ।

(3) संवास अनुमति :- जो पुत्रादि के पापकार्यों को सुनता भी नहीं है और अनुमोदना भी नहीं करता है, फिर भी पुत्रादि के साथ में रहने के कारण संवास अनुमति का दोष लगता है ।

इन तीन में से संवास अनुमति को छोड़ जो दो का त्याग करता है, वह उत्कृष्ट श्रावक कहलाता है ।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक की अपेक्षा इस गुणस्थानक में अनंतगुणी विशुद्धि होती है ।

अप्रत्याख्याणीय चार कषायों का क्षयोपशम होने पर जीवात्मा को देशविरति- धर्म की प्राप्ति होती है ।

देशविरति गुणस्थानक संख्याता वर्ष के आयुष्य वाले युगलिक सिवाय के तिर्यंच और मनुष्य को होता है ।

युगलिक मनुष्य और तिर्यंच को 1 से 4 गुणस्थानक होते हैं ।

जिस मनुष्य ने युगलिक तिर्यंच का आयुष्य बांधने के बाद क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया हो तो वह मनुष्य मरकर युगलिक तिर्यंच बनेगा, परंतु वहाँ चौथा ही गुणस्थानक होगा, वह 5 वें गुणस्थानक को प्राप्त नहीं करेगा।

कोई भी देशविरति तिर्यंच क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं करते हैं। पाँचवें गुणस्थानक में तिर्यंचगति में क्षायिक सम्यक्त्व को छोड उपशम और क्षयोपशम दो ही सम्यक्त्व होते हैं।

देशविरति गुणस्थानक में पापों की आंशिक विरति होती है अर्थात् उन पापों के त्याग की प्रतिज्ञा होती है, जैन दर्शन की मान्यता है कि पापत्याग की प्रतिज्ञा न हो तो पाप न करने पर भी पाप का बंध होता है।

इस गुणस्थानक का काल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से कुछ न्यून एक करोड़ पूर्व वर्ष है।

6) प्रमत्त संयत गुणस्थानक

इस गुणस्थानक में हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह रूप पापों का सर्वथा त्याग होता है। इस गुणस्थानकवर्ती संयमी महात्मा को भी संज्वलन कषाय का उदय होने से निद्रा आदि प्रमाद होता है, अतः इसे **प्रमत्त संयत गुणस्थानक** कहते हैं।

मन, वचन और काया से, करण-करावण और अनुमोदन से सभी पाप प्रवृत्तियों का त्याग जिस गुणस्थानक में होता है, उसे सर्वविरति गुणस्थानक भी कहते हैं।

यह गुणस्थानक सिर्फ मनुष्य को ही प्राप्त होता है।

इस गुणस्थानक में देशविरति की अपेक्षा विशुद्धि का प्रकर्ष होता है और अप्रमत्त गुणस्थानक की अपेक्षा विशुद्धि का अपकर्ष होता है।

इस गुणस्थानक की स्थिति जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से कुछ न्यून एक करोड पूर्व वर्ष है।

इससे आगे के गुणस्थानक भी सिर्फ मनुष्य को ही होते हैं।

इसी गुणस्थानक में चौदह पूर्वी अपनी आहारक लब्धि का प्रयोग करते हैं।

इस गुणस्थानक में प्रत्याख्यानावरण कषाय का अभाव होता है।

देशविरति-सर्वविरति में अंतर :-

1 आंशिक पापों से विरति को देशविरति कहते हैं ।

संपूर्ण पापों से विरति को सर्वविरति कहते हैं ।

2 अप्रत्याख्यानीय कषाय के क्षयोपशम से देशविरति और प्रत्याख्यानीय कषाय के क्षयोपशम से सर्वविरति की प्राप्ति होती है ।

3 जघन्य से एक और उत्कृष्ट से बारह व्रतधारी देशविरतिधर श्रावक कहलाता है ! जीवन पर्यंत सामायिक और पाँच महाव्रतों को स्वीकार करने वाला सर्वविरतिधर संयमी कहलाता है ।

4 संख्याता वर्ष के आयुष्यवाले मनुष्य व तिर्यंच ही देशविरति धर्म को स्वीकार कर सकते हैं ।

संख्याता वर्ष के आयुष्यवाला मनुष्य ही सर्वविरति धर्म को स्वीकार कर सकता है ।

5 देशविरतिधर असंख्यात होते हैं ।

सर्वविरतिधर दो हजार करोड़ से नौ हजार करोड़ तक होते हैं ।

6 देशविरति का जघन्य काल एक अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से कुछ न्यून पूर्व करोड़ वर्ष है ।

सर्वविरति का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त है ।

7 एक जीव को एक भव में दो हजार से नौ हजार बार और संपूर्ण भवचक्र में असंख्य बार देशविरति के परिणाम आ और जा सकते हैं ।

एक जीव को एक भव में 200 से 900 बार और एक भवचक्र में 2000 से 9000 बार सर्व विरति के परिणाम आते और जाते हैं ।

दर्शन मोहनीय और अनंतानुबंधी आदि 12 कषायों के क्षयोपशम बिना चारित्र की प्राप्ति नहीं होती है, अतः भाव चारित्र के लिए दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय का क्षयोपशम जरूरी है । इसके साथ ज्ञानावरणीय आदि तीन घातिकर्मों का क्षयोपशम भी जरूरी है । अष्ट प्रवचनमाता के बोध के लिए ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम चाहिए ।

ईर्यासमिति आदि के पालन के लिए चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन का क्षयोपशम चाहिए ।

विहार आदि के लिए वीर्यांतराय कर्म का क्षयोपशम चाहिए ।

इस प्रकार चारित्र-पालन हेतु सभी घातिकर्मों के क्षयोपशम की अपेक्षा रहती है ।

अभव्य आत्मा भी चारित्र स्वीकार करती है, परंतु उसका चारित्र द्रव्य चारित्र ही होता है, क्योंकि अभव्य आत्मा को दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय का कभी क्षयोपशम नहीं होता है ।

अभव्य आत्मा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय कर्म के क्षयोपशम के कारण द्रव्य चारित्र का पालन कर सकती है ।

दर्शनमोहनीय और अंनतानुबंधी आदि बारह कषायों के क्षयोपशम से होने वाला चारित्र, भाव चारित्र कहलाता है और उसके नीचे के गुणस्थानकों में होने वाला चारित्र, द्रव्य चारित्र कहलाता है ।

मिथ्यात्व आदि गुणस्थानकों में चारित्र का पालन होता है, परंतु चारित्र का परिणाम (भाव) नहीं होता है ।

अप्रत्याख्यानीय कषाय के क्षयोपशम से देशविरति धर्म की प्राप्ति होती है और प्रत्याख्यानीय कषाय के क्षयोपशम से सर्व विरति धर्म की प्राप्ति होती है ।

अभव्य जीव द्रव्य चारित्र के प्रभाव से नौवें ग्रैवेयक तक उत्पन्न हो सकता है ।

7) अप्रमत्त संयत गुणस्थानक

जिस संयमी आत्मा के व्यक्त या अव्यक्त प्रमाद नष्ट हो गया हो, वह आत्मा 7वें अप्रमत्त गुणस्थानक को प्राप्त करती है । इस गुणस्थानक में निद्रा आदि प्रमाद का सर्वथा अभाव होने से इसे अप्रमत्त संयत गुणस्थानक कहते हैं ।

छठे गुणस्थानक में प्रमाद होने से व्रतों में अतिचार आदि दोष लगते है, जब कि इस गुणस्थानक में प्रमाद का सर्वथा अभाव होने से व्रत में अतिचार दोष नहीं लगते है ।

इस गुणस्थानक का काल जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त है । उसके बाद अप्रमत्त महात्मा या तो आठवें गुणस्थानक को प्राप्तकर उपशम या क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होते हैं अथवा छठे गुणस्थानक में आ जाते हैं ।

इस गुणस्थानक से आगे के सभी गुणस्थानकों में आत्मा अप्रमत्त ही होती है ।

इस गुणस्थानक में संज्वलन और नो-कषाय का मंद उदय होता है ।

प्रमाद और अप्रमादभाव का एक-एक अन्तर्मुहूर्त में परिवर्तन होता रहता है, अतः देशोन पूर्व कोटि वर्ष तक झूले की भाँति जीव छट्ठे से सातवें और सातवें से छट्ठे गुणस्थानक में गमनागमन करता रहता है ।

इसी गुणस्थानक में जंघाचारण, विद्याचारण आदि लब्धियाँ प्राप्त होती हैं ।

जो अप्रमत्त आत्मा मोहनीय कर्म का संपूर्ण क्षय या उपशम कर श्रेणी पर चढ़ने का प्रारंभ करती है, वह आत्मा इस गुणस्थानक में श्रेणी संबंधी अपूर्वकरण करती है ।

8) अपूर्वकरण गुणस्थानक

अनादि इस संसार में ऐसे अध्यवसाय पहले कभी भी नहीं आए होने से इस गुणस्थानक को **'अपूर्वकरण गुणस्थानक'** कहते हैं ।

पहले कभी नहीं हुई ऐसी स्थितिघात आदि क्रियाएँ इस गुणस्थानक में होती हैं ।

उपशम या क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाली आत्मा ही इस गुणस्थानक को प्राप्त करती है ।

यद्यपि उपशम व क्षपक श्रेणी का प्रारंभ नौवें गुणस्थानक में होता है, परंतु उसकी आधारशिला इसी गुणस्थानक में रखी जाती है ।

आठवें गुणस्थानक में आत्मा स्थितिघात आदि 5 वस्तुएँ करती है ।

1. स्थितिघात :- अपवर्तनाकरण द्वारा कर्मों की दीर्घ स्थिति को कम करना अर्थात् जो कर्मदलिक आगे उदय में आनेवाले हैं उन्हें अपवर्तनाकरण के द्वारा अपने उदय के नियत समय से हटा देना, उसे स्थितिघात कहते हैं ।

2. रसघात :- अपवर्तनाकरण द्वारा बँधे हुए ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के फल देने की तीव्र शक्ति को मंद कर देना, उसे रसघात कहते हैं ।

3. गुण श्रेणी :- जिन कर्मदलिकों का स्थितिघात किया जाता है अर्थात् जो कर्मदलिक अपने उदय के नियत स्थान से हटाये गए हों उन्हें समय के क्रम से अन्तर्मुहूर्त में स्थापित कर देना, उसे गुणश्रेणी कहते हैं ।

4. गुण संक्रमण :- पहले बँधी हुई अशुभ प्रकृतियों को वर्तमान में बँधनेवाली शुभ प्रकृतियों में बदल देना उसे गुण संक्रमण कहते हैं ।

5. अपूर्व स्थितिबंध :- पहले की अपेक्षा अत्यंत अल्प स्थितिवाले कर्मों को बाँधना, उसे अपूर्व स्थितिबंध कहते हैं ।

यद्यपि ये पाँचों प्रक्रियाएँ सम्यक्त्व प्राप्ति के साथ पहले गुणस्थानक में भी बनती हैं, परंतु आठवें गुणस्थानक में कुछ अपूर्व ही होती हैं । क्योंकि पहले गुणस्थानक की अपेक्षा आठवें गुणस्थानक में विशुद्धि ज्यादा ही होती है ।

चारित्र मोहनीय कर्म के संपूर्ण क्षय या उपशमन के लिए तीन करण- यथाप्रवृत्तिकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण करने होते हैं, उनमें 7वें यथाप्रवृत्तिकरण गुणस्थानक में, 8वें अपूर्वकरण गुणस्थानक में और 9वें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक में होता है ।

जो अपूर्वकरण गुणस्थानक को प्राप्त कर चुके हैं, प्राप्त कर रहे हैं और आगे प्राप्त करेंगे- उन सब जीवों के अध्यवसाय स्थानों की संख्या, असंख्यात लोकाकाश के प्रदेश बराबर है ।

अपूर्वकरण गुणस्थानक के प्रथम समयवर्ती त्रैकालिक (भूत, भविष्य और वर्तमान) सभी जीव समान कषाय उदयवाले होने पर भी उन सबकी लेश्या एक समान नहीं होती है, अतः उनके अध्यवसायों में तरतमता होती है, उन्हें छह भागों में बाँटा गया है ।

• कुछ जीवों के सबसे कम विशुद्धि होती है, उसे प्रथम अध्यवसाय स्थान कहते हैं । उसकी अपेक्षा कुछ जीवों के अध्यवसाय अधिक विशुद्धिवाले होते हैं ।

• कुछ जीवों के अध्यवसाय प्रथम विशुद्धि स्थान की अपेक्षा असंख्यात भाग अधिक विशुद्धि वाले होते हैं ।

• कुछ जीवों के अध्यवसाय संख्यात भाग अधिक विशुद्धिवाले होते हैं ।

• कुछ जीवों के अध्यवसाय संख्यात गुण अधिक विशुद्धि वाले होते हैं ।

• कुछ जीवों के अध्यवसाय असंख्यात गुण अधिक विशुद्धि वाले होते हैं ।

• कुछ जीवों के अध्यवसाय अनंत गुण अधिक विशुद्धि वाले होते हैं ।

इस प्रकार जघन्य विशुद्धि स्थान की अपेक्षा उपर्युक्त षट्स्थान वृद्धि स्थान हुए ।

उसी प्रकार उत्कृष्ट विशुद्धि स्थान की अपेक्षा षट्स्थान हानि वाले स्थान भी होते हैं ।

उदा- अपूर्वकरण के प्रथम समय जो सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि स्थान थे, उसकी अपेक्षा कुछ जीवों के अध्यवसाय अनंत भाग हीन.

कुछ जीवों के अध्यवसाय असंख्यात भाग हीन और

कुछ जीवों के अध्यवसाय संख्यात भाग हीन होते हैं ।

कुछ जीवों के अध्यवसाय संख्यात गुण हीन,

कुछ जीवों के अध्यवसाय असंख्यात गुण हीन और

कुछ जीवों के अध्यवसाय अनंत गुण हीन होते हैं ।

ऊर्ध्वमुखी शुद्धि :- प्रथम समय के अध्यवसायों की अपेक्षा दूसरे समय के अध्यवसाय भिन्न ही होते हैं ।

प्रत्येक समय के जघन्य अध्यवसाय की अपेक्षा उसी समय के उत्कृष्ट अध्यवसाय अनंतगुण विशुद्ध समझने चाहिए तथा पूर्व-पूर्व समय के उत्कृष्ट अध्यवसायों की अपेक्षा आगे-आगे के समय के अध्यवसाय भी अनंतगुण विशुद्ध समझने चाहिए ।

इस गुणस्थानक का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

9) अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक

इस गुणस्थानक का पूरा नाम अनिवृत्ति बादर संपराय गुणस्थानक है । इस में बादर अर्थात् स्थूल कषायों का उदय होता है । इस की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

एक अन्तर्मुहूर्त के जितने समय होते हैं, उतने ही इस गुणस्थानक के अध्यवसाय स्थान होते हैं ।

इस गुणस्थानक में प्रवेश करनेवाले सभी जीवों के (भूत, भविष्य और वर्तमान) अध्यवसाय एक समान ही होते हैं ।

इसके बाद दूसरे-तीसरे आदि समय में भी सभी जीवों के अध्यवसाय समान ही होते हैं ।

इस गुणस्थानक के जितने समय होते है उतने ही अध्यवसाय स्थान होने से प्रत्येक समय में एक ही परिणाम होता है ।

भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न परिणाम हो सकते हैं परंतु एक समयवर्ती जीवों के एक ही समान परिणाम होते हैं ।

इस गुणस्थानक को दो प्रकार के जीव प्राप्त करते हैं- (1) उपशमक और (2) क्षपक ।

जो जीव चारित्र मोहनीय का उपशमन करते हैं, वे उपशमक कहलाते हैं ।

जो जीव चारित्र मोहनीय का क्षय करते हैं, वे जीव क्षपक कहलाते हैं ।

आठवें-नौवें गुणस्थानक में अंतर :-

(1) आठवें गुणस्थानक में प्रवेश करने वाले सभी जीवों की विशुद्धि एक समान नहीं होती है, अर्थात् उसमें तरतमता होती है ।

जब कि नौवें गुणस्थानक में प्रवेश करने वाले सभी जीवों की विशुद्धि एक समान होती है ।

(2) आठवें गुणस्थानक के अध्यवसाय स्थान असंख्य-लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं ।

नौवें गुणस्थानक के अध्यवसाय स्थान अन्तर्मुहूर्त के जितने समय, उतने हैं ।

(3) आठवें गुणस्थानक में स्थितिघात आदि क्रियाएँ होती हैं ।

नौवें गुणस्थानक में उपशमक आत्मा मोहनीय कर्म का उपशमन करती है और क्षपक आत्मा मोहनीय कर्म का क्षय करती है ।

(4) आठवें गुणस्थानक में, नौवें गुणस्थानक की अपेक्षा अनंतगुणहीन विशुद्धि होती है ।

नौवें गुणस्थानक में आठवें गुणस्थानक की अपेक्षा अनंतगुण अधिक विशुद्धि होती है ।

10) सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक

इस गुणस्थानक में लोभ के सूक्ष्म खंडों का उदय होने से इस गुणस्थानक का नाम सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक है । इस गुणस्थानक में जीव संज्वलन लोभ के सूक्ष्म खंडों का वेदन करता है ।

यह गुणस्थानक उपशम श्रेणी पर चढ़ने वाले उपशमक और क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाले क्षपक, इन दोनों को ही होता है ।

जो उपशमक होते हैं, वे लोभ कषाय के सूक्ष्म अंश का उपशमन करते हैं और जो क्षपक होते हैं, वे लोभ कषाय के सूक्ष्म अंश का क्षय करते हैं ।

इस गुणस्थानक की जघन्य स्थिति एक समय और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

11) उपशांत कषाय–छद्मस्थ वीतराग गुणस्थानक

इस गुणस्थानक में कषायों का सर्वथा उपशमन होने के कारण इस गुणस्थानक को उपशांतमोह गुणस्थानक भी कहते हैं ।

इस गुणस्थानक में मोहनीय कर्मों की सत्ता तो होती है, परंतु उदय नहीं होता है ।

इस गुणस्थानक में रहा जीव आगे के गुणस्थानकों को प्राप्त नहीं करता है, क्योंकि क्षपकश्रेणी में रही आत्मा ही आगे के गुणस्थानकों को प्राप्त कर सकती है ।

उपशमश्रेणी पर चढ़नेवाली आत्मा ही इस गुणस्थानक को प्राप्त करती है । इस गुणस्थानक से जीव अवश्य गिरता है ।

गुणस्थानक का समय पूरा न होने पर भी यदि आयुष्य का क्षय हो जाता है तो वह आत्मा अवश्य ही अनुत्तर विमान में पैदा होती है, वहाँ पाँचवें आदि गुणस्थानकों की संभावना नहीं होने से वहाँ चौथे गुणस्थानक को प्राप्त करती है । वह जीव उस गुणस्थानक के योग्य प्रकृतियों के बंध, उदय, उदीरणा आदि का प्रांरभ कर देता है ।

जो आत्मा ग्यारहवें गुणस्थानक को पूर्ण कर नीचे गिरती है, वह आत्मा पतन के समय, आरोहण क्रम के अनुसार गुणस्थानक को प्राप्त करती है, और उस गुणस्थानक के योग्य कर्म प्रकृतियों के बंध आदि का प्रांरभ कर देती है ।

कालसमाप्ति के बाद इस गुणस्थानक से गिरने वाली कोई आत्मा छठे गुणस्थानक को, कोई पाँचवें गुणस्थानक को, कोई चौथे गुणस्थानक को और कोई दूसरे गुणस्थानक से होकर पहले गुणस्थानक में आ जाती है ।

8 उपशम श्रेणी का स्वरूप

श्रेणिगत उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति :- क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव चौथे से सातवें गुणस्थानक में जीव सर्व प्रथम अनंतानुबंधी कषायों की विसंयोजना करता है, मतांतर से उपशमन करता है । उसके बाद प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानक में रही आत्मा दर्शन का उपशमन कर श्रेणिगत उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करती है ।

इसके बाद जीव छठे-सातवें गुणस्थानक में आता-जाता है ।

फिर आठवें से नौंवें गुणस्थानक को प्राप्त करता है, जहाँ चारित्र मोहनीय की शेष प्रकृतियों का उपशमन प्रारंभ करता है ।

उसके बाद नपुंसक वेद, स्त्री वेद, हास्यादि षट्क, पुरुष वेद का उपशमन करता है ।

फिर एक साथ में अप्रत्याख्यानीय-प्रत्याख्यानीय क्रोध, फिर संज्वलन क्रोध, उसके बाद अप्रत्याख्यानीय-प्रत्याख्यानीय मान, फिर संज्वलन मान, उसके बाद अप्रत्याख्यानीय-प्रत्याख्यानीय माया, फिर संज्वलन माया का उपशमन करता है, फिर अप्रत्याख्यानीय-प्रत्याख्यानीय लोभ का उपशमन कर जीव दसवें गुणस्थानक में प्रवेश करता हैं ।

10वें गुणस्थानक में जीव संज्वलन लोभ का उपशमन करता है ।

उपशमक जीव जब सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक के चरम समय में प्रवेश करता है, तब संज्वलन लोभ संपूर्ण शांत हो जाता है, उस समय मोहनीय की 28 प्रकृतियाँ संपूर्ण शांत हो जाती हैं ।

उसके बाद के समय में अंतरकरण में प्रवेश करने के साथ ही उपशांत मोह गुणस्थानक में औपशमिक वीतरागता प्राप्त होती है ।

राख से ढकी हुई अग्नि (अंगारे) की तरह जब तक मोहनीय कर्म उपशांत रहता है, तब तक जीव वीतरागता का अनुभव करता है, उसके बाद कषाय का उदय हो जाने से उपशांत अवस्था नष्ट हो जाती है । उस समय जीव का अवश्य पतन होता है । उपशम श्रेणी में ही जीव का आयुष्य पूरा हो जाय तो जीव वैमानिक देव बनता है और वहाँ सीधे चौथे गुणस्थानक को प्राप्त करता है ।

11वें गुणस्थानक का काल पूर्ण होने पर जीव वहाँ से आगे नहीं जा सकता है, अतः वहाँ से क्रमशः 10-9-8-7वें गुणस्थानक से गिरकर छठे गुणस्थानक में आता है, कोई जीव वहाँ पाँचवें में तो कोई चौथे में आता है तो कोई वहाँ से पहले मिथ्यात्व में आता है ।

भिन्न-भिन्न मत

संपूर्ण भवचक्र में एक जीव चार बार उपशम श्रेणी प्राप्त कर सकता है । **कर्म ग्रंथ** के मत से एक जीव एक भव में एक बार उपशमश्रेणी पर चढ़ा

हो तो उसी भव में क्षपक श्रेणी पर भी चढ़ सकता है, परंतु एक भव में दो बार उपशम श्रेणी पर चढने वाला उसी भव में क्षपक श्रेणी पर नहीं चढ सकता है। सिद्धान्त के मत से एक भव में एक ही बार उपशम श्रेणी पर चढ़ सकते है और एक बार उपशम श्रेणी पर चढ़ा जीव उसी भव में क्षपक श्रेणी पर नहीं चढ़ सकता है ।

गुणस्थानकों में ऊर्ध्व आरोहण

(1) पहले गुणस्थानक में रहा जीव चौथे, पाँचवें, छठे व सातवें गुणस्थानक को प्राप्त कर सकता है ।

(2) चौथे गुणस्थानक से जीव तीसरे गुणस्थानक में जा सकता है ।

(3) चौथे गुणस्थानक से जीव पाँचवें, छठे, सातवें गुणस्थानक में जा सकता है ।

(4) पाँचवें गुणस्थानक से जीव छठे व सातवें गुणस्थानक में जा सकता है ।

(5) छठे गुणस्थानक से जीव सातवें में जा सकता है ।

(6) सातवें से जीव आठवें, आठवें से नौवें, नौवें से दसवें एवं दसवें से ग्यारहवें गुणस्थानक में जा सकता है ।

12) क्षीणमोह छद्मस्थ वीतराग गुणस्थानक

मोहनीय कर्म का संपूर्ण क्षय होने पर इस गुणस्थानक की प्राप्ति होती है । यह गुणस्थानक क्षपक श्रेणी करनेवाली आत्मा को ही प्राप्त होता है ।

मोहनीय का नाश होने पर भी इस गुणस्थानक में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय कर्म की भी सत्ता रहती है, अतः इस गुणस्थानक में भी आत्मा छद्मस्थ कहलाती है ।

क्षपक श्रेणी में रही आत्मा दसवें गुणस्थानक को पार कर सीधे ही इस गुणस्थानक को प्राप्त करती है ।

इस गुणस्थानक का काल जघन्य और उत्कृष्ट से एक अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ।

इस गुणस्थानक के चरम समय में आत्मा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय कर्म का भी सर्वथा क्षय कर देती है और वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और अनंतवीर्य गुण संपन्न बनती है । वीतरागता, सर्वज्ञता आदि क्षायिक गुण होने

से अब एक बार आने के बाद कभी जाते नहीं है ।

सर्वज्ञ बनी आत्मा अब भविष्य में कभी भी असर्वज्ञ नहीं बनती है ।

9 क्षपक श्रेणी का स्वरूप

क्षपक श्रेणी का प्रारंभ मनुष्य ही कर सकता है जिसकी उम्र आठ वर्ष से कुछ अधिक होनी जरूरी है । क्षपक श्रेणी के लिए प्रथम संघयण भी जरूरी है ।

सर्व प्रथम क्षपकश्रेणी पर चढ़नेवाली आत्मा चौथे से सातवें गुणस्थानक में अनंतानुबंधी कषायों का क्षय करती है, उसके बाद दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियाँ, सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय, और मिथ्यात्व मोहनीय का भी क्षय करती है ।

उसके बाद आठवें गुणस्थानक में आत्मा अप्रत्याख्यानीय चार कषाय और प्रत्याख्यानीय चार कषाय के क्षय का प्रारंभ करती है, परंतु बीच में ही नौवें गुणस्थानक को प्राप्तकर थीणद्धित्रिक, नरकद्विक, तिर्यंचद्विक, एकेन्द्रिय आदि जाति चतुष्क, स्थावर, आतप, उद्योत, सूक्ष्म और साधारण नाम कर्म-इन 16 प्रकृतियों का नाश कर देती है, फिर अन्तर्मुहूर्त बाद कषाय अष्टक का क्षय करती है ।

उसके बाद नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, हास्यषट्क, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया और बादर लोभ इन 10 प्रकृतियों का क्षय करती है, तब नौवाँ गुणस्थानक का काल पूरा हो जाता है ।

फिर 10वें गुणस्थानक में संज्वलन सूक्ष्म लोभ का क्षयकर आत्मा यथाख्यात चारित्र प्राप्त करती है ।

उसके बाद आत्मा 12वें गुणस्थानक को प्राप्त करती है, जिसके द्विचरम समय में निद्राद्विक और अंतिम समय में ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 4 और अंतराय की 5 इन 14 प्रकृतियों का संपूर्ण क्षय कर सर्वज्ञ बनती है ।

विसंयोजना और क्षय में अंतर

जिस कर्मप्रकृति की विसंयोजना हुई हो उसका पुनः बंध संभव है, परंतु जिस कर्मप्रकृति का क्षय हुआ हो उसका पुनः बंध नहीं होता है ।

विसंयोजना सिर्फ अनंतानुबंधी चतुष्क की ही होती है ।

उपशम श्रेणी व क्षपक श्रेणी में अंतर

(1) परिणामों की विशुद्धि द्वारा जीव उपशम श्रेणी में चारित्र मोहनीय कर्म का उपशमन करता है । परिणामों की विशुद्धि द्वारा जीव क्षपक श्रेणी में चारित्र मोहनीय कर्म का क्षय करता है ।

(2) उपशमश्रेणी वाली आत्मा 8 से 11वें गुणस्थानक का स्पर्श करती है । क्षपकश्रेणी में जीव 8 से 12वें (11वें को छोड़कर) गुणस्थानक का स्पर्श करता है ।

(3) उपशम श्रेणी के प्रत्येक गुणस्थानक में आत्मा जघन्य से 1 समय और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त रहती है । क्षपक श्रेणी में प्रत्येक गुणस्थानक में जीव जघन्य और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त रहता है ।

(4) उपशम श्रेणी में आत्मा का अवश्य पतन होता है । क्षपक श्रेणी में आत्मा का ऊर्ध्व आरोहण होता है ।

(5) उपशम श्रेणी में आत्मा औपशमिक अथवा क्षायिक समकिती होती है । क्षपक श्रेणी में आत्मा क्षायिक समकिती होती है ।

(6) उपशमश्रेणी में, क्षपक की अपेक्षा अनंतगुण हीन विशुद्धि होती है । उपशम श्रेणी की अपेक्षा क्षपक श्रेणी में अनंतगुण अधिक विशुद्धि होती है ।

(7) एक भवचक्र में एक जीव को चार बार उपशम श्रेणी प्राप्त हो सकती है । एक भवचक्र में क्षपक श्रेणी एक ही बार प्राप्त होती है ।

13) सयोगी गुणस्थानक

घातिकर्मों का क्षय होने पर आत्मा 13वें गुणस्थानक में रहती है । केवली भगवंत को पदार्थ को जानने में इन्द्रिय या पदार्थ की अपेक्षा नहीं रहती है, फिर भी वे योग (आत्म-वीर्य) से सहित होते हैं ।

केवली को भी मन-वचन और काया के योग की प्रवृत्ति होती है ।

इस गुणस्थानक का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ न्युन एक करोड़ पूर्व वर्ष है ।

जो मनुष्य घाति कर्मों का क्षयकर सिर्फ अन्तर्मुहूर्त रहकर ही मोक्ष में चले जाते हैं, वे **अन्तकृत् केवली** कहलाते हैं । वे सयोगी अवस्था में अन्तर्मुहूर्त रहकर अयोगी अवस्था प्राप्तकर मोक्ष में चले जाते हैं ।

केवली भगवंत को मनोयोग का उपयोग किसी को मन से उत्तर देने में करना पड़ता है ।

कोई मनःपर्यवज्ञानी या अनुत्तर देव विमानवासी भगवान को शब्द द्वारा न पूछकर मन द्वारा ही प्रश्न पूछते हैं, तब भगवान भी उनके प्रश्न का उत्तर मन से ही देते हैं ।

मनःपर्यवज्ञानी या अनुत्तरदेव के प्रश्न का जवाब देने के लिए केवली भगवंत मनोद्रव्य को ग्रहणकर उसे प्रश्न के अनुरूप परिणत करते हैं, उस परिणत मनोद्रव्य को देखकर मनःपर्यवज्ञानी या अनुत्तरदेव अपने प्रश्न के उत्तर को अनुमान से जानते हैं, अतः केवली भगवंत को प्रश्न का जवाब देने में मन की जरूरत रहती है ।

देशना देते समय केवली भगवंत वचन योग की और विहार आदि करते समय काययोग की प्रवृत्ति करते हैं अतः वे सयोगी कहलाते हैं ।

सयोगी केवली में कोई तीर्थंकर हो तो धर्मदेशना द्वारा तीर्थ की स्थापना भी करते हैं ।

10 केवली समुद्घात

जिन केवली भगवंतों के आयुष्य कर्म की अपेक्षा वेदनीय आदि तीन कर्मों की स्थिति ज्यादा हो, तो आयुष्य जितनी ही, वेदनीय आदि की स्थिति को रखकर शेष स्थिति का नाश करने के लिए केवली समुद्घात करते हैं ।

परंतु जिन केवली भगवंतों के चारों अघाति कर्मों की स्थिति एक समान हो उन्हें केवली समुद्घात करने की जरूरत नहीं रहती है ।

केवली समुद्घात में कुल आठ समय लगते हैं ।

पहले समय में केवली भगवंत अपने शरीर में से आत्म प्रदेशों को बाहर निकालकर स्वदेह प्रमाण चौडी और 14 राजलोक प्रमाण लंबी दंडाकृति बनाते हैं ।

दूसरे समय में वह दंड पूर्व-पश्चिम या उत्तर-दक्षिण लोक पर्यंत फैलकर कपाट का रूप लेता है ।

तीसरे समय में वह कपाट उत्तर-दक्षिण या पूर्व-पश्चिम फैलाकर मथानी (+) की आकृति बनाते हैं ।

ऐसा होने से लोक का अधिकांश भाग केवली के आत्मप्रदेशों से व्याप्त हो जाता है, फिर भी मथानी की आकृति होने से आकाश के कुछ भाग खाली रह जाते हैं ।

चौथे समय में शेष रहे स्थानों में भी केवली के आत्मप्रदेश फैल जाते हैं, जिससे आत्मा संपूर्ण लोकव्यापी बन जाती है ।

उस समय लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर केवली के आत्मप्रदेश हो जाते हैं । एक जीव के आत्मप्रदेश असंख्य हैं, जो लोकाकाश के आकाश प्रदेशों के तुल्य हैं ।

इस प्रक्रिया के बाद पुनः आत्मप्रदेशों का संकोच होने लगता है ।

पाँचवें समय में अंतराल प्रदेश खाली होकर पुनः मथानी बन जाती है । छठे समय में कपाट और सातवें समय में पुनः दंड बन जाता है । आठवें समय में केवली अपने मूल रूप में आ जाती है ।

यह क्रिया स्वाभाविक होती है, इसमें कुल आठ ही समय लगते हैं ।

इस समुद्घात की क्रिया में सिर्फ काययोग की प्रवृत्ति होती है, मन और वचन योग की प्रवृत्ति नहीं होती है । उसमें भी पहले और आठवें समय में औदारिक काययोग होता है । दूसरे, छठे और सातवें समय में औदारिकमिश्र–काय–योग होता है । एवं तीसरे, चौथे पाँचवें समय में कार्मण काय योग होता है ।

यह समुद्घात सामान्य केवली को ही होता है, परंतु तीर्थंकरों को नहीं होता है ।

11 योग निरोध

सभी केवली सयोगी अवस्था के अंत में परम निर्जरा में कारणभूत योगनिरोध करते है ।

सर्व प्रथम बादर काययोग से बादर मनोयोग और बादर वचनयोग को रोकते हैं । उसके बाद सूक्ष्म काययोग से बादर काययोग को रोकते है ।

फिर सूक्ष्म काययोग से सूक्ष्म मनोयोग और सूक्ष्म वचन योग को रोकते है ।

अंत में सूक्ष्म क्रिया अनिवृत्ति शुक्ल ध्यान द्वारा सूक्ष्म काययोग को रोक देते है ।

योगनिरोध से शाता वेदनीय का बंध रुक जाता है ।

शुक्ल लेश्या का अभाव होने से जीव अलेशी बन जाता है ।

आत्मप्रदेश मेरु की तरह स्थिर हो जाते हैं ।

भवोपग्राही कर्मों का नाश हो जाता है ।

14) अयोगी गुणस्थानक

सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती नाम के शुक्ल ध्यान के बल से केवली भगवंत अपने शरीर के एक तृतीयांश भाग में आत्मप्रदेशों को खींचकर शरीर के दो तृतीयांश भाग में स्थिर हो जाते हैं । इस कारण मोक्ष में सिद्धों की अवगाहना दो तृतीयांश भाग जितनी होती है ।

सयोगी गुणस्थानक के अंतिम समय में योग का अभाव हो जाता है ।

मन, वचन, काया के योगों का अभाव होने से चौदहवें गुणस्थानक को अयोगी गुणस्थानक कहते हैं ।

अयोगी गुणस्थानक में आत्मा `समुच्छिन्न क्रिया अनिवृत्ति' नाम के शुक्ल ध्यान से युक्त होकर सभी कर्मों के नाश के लिए शैलेशीकरण करती है ।

शैलेश-मेरु पर्वत

करण-क्रिया

यहाँ योग का अभाव होने से आत्मप्रदेश मेरु की तरह स्थिर हो जाते हैं । उसमें वेदनीय आदि कर्मों की असंख्यात गुणाकार से निर्जरा होती है, उसे शैलेशीकरण कहते हैं ।

इसका काल पाँच ह्रस्वाक्षर `अ इ उ ऋ लृ' के उच्चारण जितना है ।

अघाती कर्मों का संपूर्ण क्षय हो जाने से आत्मा में अक्षयसुख अक्षय स्थिति, अरूपीपना तथा अगुरुलघु गुण पैदा होते है । उसके बाद आत्मा अशरीरी-अमूर्त होकर एक ही समय में सिद्धशिला में पहुँच जाती है ।

लोक के अंत भाग में जाकर सिद्ध भगवंत स्थिर हो जाते हैं, वहाँ उनकी अवगाहना $\frac{2}{3}$ भाग जितनी होती है ।

वे अनंत काल तक निजगुण-रमणता के परम आनंद का अनुभव करते हैं ।

लोकांत के आगे धर्मास्तिकाय का अभाव होने से सिद्ध भगवंत आगे गति नहीं करते हैं ।

12 गुणस्थानकों का संक्षिप्त

अनु.	गुणस्थानक	लक्षण	विशिष्ट कर्मोदय
1.	मिथ्यात्व	तत्त्व पर विपरीत द्रष्टि	मिथ्यात्व मोहनीय और अनंतानु बंधी कषाय
2.	सास्वादन-	सम्यक्त्व के स्वाद का कुछ अनुभव	अनंतानुबंधी कषाय
3.	मिश्र	तत्त्व पर रुचि/अरुचि नहीं	मिश्रमोहनीय
4.	अविरत सम्यग्दृष्टि	तत्त्व पर यथार्थ रुचि परंतु विरति अग्रहण	अप्रत्याख्यानीय कषाय
5.	देशविरत	आंशिकविरति ग्रहण	प्रत्याख्यानीय कषाय
6.	प्रमत्तसंयत	सर्वविरतिग्रहण परंतु प्रमाद	संज्वलन कषाय
7.	अप्रमत्तसंयत	सर्वविरतिग्रहण-प्रमाद नहीं	पूर्व से मंद संज्वलन कषाय
8.	अपूर्वकरण (निवृत्तिकरण)	स्थितिघात आदि 5 अपूर्व वस्तु करे	पूर्व से मंद संज्वलन कषाय
9.	अनिवृत्ति बादर संपराय	मोहनीय की प्रकृतिओं की क्षपणा और उपशमना	पूर्व से मंद संज्वलन कषाय
10.	सूक्ष्मसंपराय	मोहनीय की प्रकृतिओं की क्षपणा और उपशमना	मात्र सूक्ष्म संज्वलन लोभ
11.	उपशांत मोह वीतराग छद्मस्थ	मोहनीय का उदयाभाव	मोहनीय सिवाय 7 कर्म
12.	क्षीणमोह वीतराग छद्मस्थ	वीतराग भाव लेकिन छद्मस्थ	मोहनीय सिवाय 7 कर्म
13.	सयोगीकेवली	केवलज्ञान-दर्शन परंतु मन वचन-काया के योग	4 अघाति (42) प्रकृति
14.	अयोगीकेवली	योग और कर्मबंध का अभाव 12 का उदय और 85 की सत्ता है	4 अघाति की 12 का विपाक, और 73 का स्तिबुक संक्रम
0	सिद्धावस्था	स्वभावावस्था	सभी कर्मों से मुक्त

स्वरुपदर्शक यन्त्र

अनु.	विशेष	काल
1.	धतूरा खाये पुरुष जैसा	ज.अंतर्मुहूर्त उ. देशोनार्धपुद्गल परावर्त
2.	वमन के स्वाद जैसा । उपशम स. या श्रेणी से गिरते हुए यहाँ से मिथ्यात्व में जाते है ।	ज. 1 समय उ. 6 आवलिका
3.	नारियल द्वीप के मनुष्य जैसा	अंतर्मुहूर्त
4.	1. स. मोह के उदय से क्षायोपशमिक स.	ज.अंतर्मुहूर्त उ.साधिक 66 सागरोपम
	2. दर्शनमोह उदय के अभाव से उपशम स.	अंतर्मुहूर्त
	3. दर्शनमोह उदय और सत्ता के अभाव से क्षायिक सम्यक्त्व	सादि अनंत – इस गुणस्थानक में ज.अंतर्मुहूर्त, उ.साधिक 33 सागरो
5.	देशविरति श्रावक	ज.अंतर्मुहूर्त, उ.देशोनपूर्वकोटी
6.	सर्वविरतिधर साधु	ज.1 समय, उ. देशोनपूर्वकोटी x
7.	अप्रमत्त सर्वविरतिधर	ज. 1 समय, उ. अंतर्मुहूर्त
8.	क्षपक/उपशम श्रेणी का प्रारंभ । साथ में चढे सभी जीवों की विशुद्धि एक समान नहीं ।	क्षपकः–अंतर्मुहूर्त उप.:ज. 1 समय उ. अंतर्मुहूर्त
9.	क्षपक–मोहनीय प्रकृतियों का क्षय उपशामक–मोहनीय प्रकृतियों का उपशम	क्षपकः–अंतर्मुहूर्त उप.:ज. 1 समय उ. अंतर्मुहूर्त
10.	क्षपक/उपशामक:सं.लोभ का क्षय/उपशम	क्षपकः–अंतर्मुहूर्त उप.:ज. 1 समय उ. अंतर्मुहूर्त
11.	उपशामक को ही हो । सर्वमोहनीय प्रकृति का उपशम होता है । यहाँ से अवश्य गिरते है ।	ज.1 समय उ. अंतर्मुहूर्त
12.	क्षपक को ही हो । सर्वमोहनीय प्रकृति क्षीण होती है, यहाँ से नहीं गिरते है ।	ज. उ. अंतर्मुहूर्त
13.	केवलज्ञानी बनकर अंत में योग निरोध करे	उ. देशोन पूर्व कोटी ज. अंतर्मूहूर्त
14.	शैलेशी करण	पांच ह्स्वाक्षर
0	निजगुण रमणता के परम आनंद का अनुभव	सादि-अनंतकाल

X–मतांतर से 6-7 गुणस्थानक अन्तर्मुहूर्त में परावर्तमान है ।

गुणस्थानकों का जघन्य-उत्कृष्ट काल

1) मिथ्यात्व गुणस्थानक :- अभव्य की अपेक्षा अनादि अनंत, भव्य की अपेक्षा अनादि-सांत है ।

सम्यक्त्व से पतित की अपेक्षा सादिसांत है, अर्थात् गुणस्थानक का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तकाल है ।

2) सास्वादन गुणस्थानक :- जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से छह आवलिका ।

3) मिश्र गुणस्थानक :- जघन्य और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त ।

4) अविरत सम्यग्दृष्टि :- जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से साधिक 33 सागरोपम है ।

5) देशविरत :- जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से देशोन पूर्व करोड़ वर्ष है ।

6) प्रमत्त संयत :- जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त ।

7) अप्रमत्त संयत :- जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त । छठे-सातवें गुणस्थानक को जोड़ने पर जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट से देशोन पूर्व करोड़ वर्ष है ।

8-9-10-11) :- उपशम श्रेणी में अपूर्व करण आदि का जघन्य काल एक समय व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

8-9-10-12) :- क्षपक श्रेणी में जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

13) सयोगी:- जघन्य से अन्तर्मुहूर्त व उत्कृष्ट से देशोन पूर्व करोड़ वर्ष है ।

14) अयोगी :- पाँच ह्रस्वाक्षर उच्चारण मात्र ।

भवचक्र में गुणस्थानकों की प्राप्ति

एक जीव को भवचक्र में–

मिथ्यात्व गुणस्थानक-असंख्य बार,

सास्वादन गुणस्थानक-पांच बार,

3-4-5वाँ गुणस्थानक-असंख्य बार,

छठा-सातवाँ गुणस्थानक-दो हजार से नौ हजार बार,

8-9-10वाँ गुणस्थानक-उपशम में चढ़ते चार बार, उतरते चार बार और क्षपक श्रेणी में 1 बार, इस प्रकार कुल नौ बार प्राप्त होता है ।

उपशांत मोह-चार बार

12-13-14वाँ गुणस्थानक-एक बार प्राप्त होता है ।

13 बंध-विधान

(1) मिथ्यात्व गुणस्थानक

अभिनव कम्मग्गहणं, बंधो ओहेण तत्थ वीस सयं ।
तित्थयराहारगदुग, वज्जं मिच्छम्मि सतरसयं ।।3।।

शब्दार्थ :-

अभिनव=नवीन
कम्मग्गहणं=कर्मग्रहण
बंधो=बंध
ओहेण=ओघ से
तत्थ=वहाँ
वीससयं=एक सो बीस (120)
तित्थयर=तीर्थंकर
आहारग=आहारक
दुग=दो
वज्जं=छोड़कर
मिच्छम्मि=मिथ्यात्व में
सतरसयं=एक सो सत्रह (117)

भावार्थ :- नए कर्मों को ग्रहण करना, उसे बंध कहते हैं । सामान्य से अर्थात् किसी जीवस्थान गुणस्थानक की विवक्षा किए बिना बंध योग्य 120 कर्म प्रकृतियाँ हैं ।

मिथ्यात्व गुणस्थानक में नामकर्म और आहारक-द्विक को छोडकर 117 कर्म प्रकृतियों का बंध होता है ।

विवेचन :- इस संसार में जहाँ आत्मा रही हुई है, उसके चारों ओर अनंत-अनंत कार्मण वर्गणाएँ भी रही हुई है । मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग रूप हेतुओं से आत्मा कर्मबंध करती रहती है ।

मिथ्यात्व आदि हेतुओं से आत्मा जिन नवीन कर्मों को ग्रहण करती है, उसे 'बंध' कहते हैं ।

सामान्य से कर्मबंध की 120 प्रकृतियाँ हैं- जो इस प्रकार हैं–

ज्ञानावरणीय	की	5	प्रकृति
दर्शनावरणीय	की	9	प्रकृति
वेदनीय	की	2	प्रकृति
मोहनीय	की	26	प्रकृति

आयुष्य	की	4	प्रकृति
नाम	की	67	प्रकृति
गोत्र	की	2	प्रकृति
अंतराय	की	5	प्रकृति
इस प्रकार	कुल	120	प्रकृतियाँ होती हैं ।

यद्यपि नाम कर्म के 67 की तरह 93 भेद भी होते हैं । सत्ता में नाम कर्म के 93 भेद बताकर 148 प्रकृतियाँ मानी गई हैं । परंतु बंध में नाम कर्म के 67 भेद की ही विवक्षा होने से बंध योग्य कुल प्रकृतियाँ 120 मानी गई है ।

बंध-विधि

शुभ-अशुभ अध्यवसायों के द्वारा आत्मा कर्म का बंध करती है । कर्म के बंध द्वारा आत्मा अनंतानंत कार्मण वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करती है, उसी समय चार वस्तुओं का निर्णय होता है- (1) प्रकृति (स्वभाव) (2) स्थिति (काल) (3) रस (शुभ-अशुभ फल देने की तीव्रता या मंदता) (4) प्रदेश (कर्म दलिकों का प्रमाण)

आत्मा जो स्थितिबंध करती है, उसके दो विभाग होते हैं–

(1) अयोग्य स्थिति (आबाधा काल) :- आत्मा जिस स्थिति वाले कर्मों का बंध करती है, तथा स्वभाव से ही कुछ समय तक कर्मदलिकों की रचना नहीं होती है, उसे अयोग्य स्थिति अर्थात् **आबाधा** काल कहते हैं ।

(2) योग्य स्थिति (निषेक काल) :- जिस समय कर्म की स्थिति का बंध होता है, उसमें आबाधा काल की स्थिति को छोड़ योग्य काल में कर्म दलिकों की रचना हो जाती है । उसे योग्य स्थिति या निषेक स्थिति कहते हैं ।

उदा. मोहनीय कर्म की 70 कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति का बंध किया तो वह स्थिति दो भाग में बँट जाएगी-

(1) 7000 वर्ष की स्थिति - अयोग्य स्थिति (आबाधा काल)

(2) 7000 वर्ष न्यून 70 कोडाकोडी सागरोपम की स्थिति (योग्य स्थिति) ।

अब गुणस्थानक की अपेक्षा बंध योग्य प्रकृति बताते है ।

मिथ्यात्व नाम के पहले गुणस्थानक में 117 कर्म प्रकृतियों का बंध होता है ।

मिथ्यात्व गुणस्थानक में रहा एक ही जीव 117 प्रकृतियाँ बाँध देता हो, ऐसा नहीं है बल्कि अनेक जीवों की अपेक्षा इस गुणस्थानक में अधिकतम 117 प्रकृतियों का बंध हो सकता है ।

मिथ्यात्व गुणस्थानक में तीर्थंकर नाम कर्म और आहारक द्विक (आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग नाम कर्म) इन तीन प्रकृतियों का बंध नहीं होता है ।

तीर्थंकर नाम कर्म का बंध सम्यक्त्व की उपस्थिति में ही होता है तथा आहारक द्विक का बंघ अप्रमत्तादि गुणस्थानक में ही होता है ।

अबंध और बंध विच्छेद में अंतर

जिस गुणस्थानक में जिस कर्म प्रकृत्ति का **अबंध** कहा हो, उस प्रकृति का उस गुणस्थानक में बंध नहीं होता है, परंतु उसके आगे के गुणस्थानकों में बंध हो सकता है ।

जिस प्रकृति का **'बंध विच्छेद'** कहा हो, उस प्रकृति का उस गुणस्थानक या उसके आगे के गुणस्थानक में भी बंध नहीं होता है ।

(2) सास्वादन गुणस्थानक

नरयतिग जाइ थावर-चउ हुंडा-यव-छिवट्ठ-नपु-मिच्छं ।
सोलंतो इगहिअसय, सासणि तिरि-थीण-दुहगतिगं ।।4।।

शब्दार्थ :-

नरयतिग=नरक त्रिक	**सोलंतो=**सोलह का अंत
जाइ=जाति	**इगहिअसय=**एक सो एक (101)
थावरचउ=स्थावर चतुष्क	**सासणि=**सास्वादन में
हुंडायव=हुंडक संस्थान-आतप	**तिरि=**तिर्यंच
छिवट्ठ=सेवार्त	**थीण=**थिणद्धि
नपु=नपुंसक वेद	**दुहगतिगं=**दौर्भाग्य त्रिक
मिच्छं=मिथ्यात्व	

भावार्थ :- नरकत्रिक, जाति चतुष्क, स्थावर चतुष्क, हुंडक संस्थान, आतप, सेवार्त संघयण, नपुंसकवेद, मिथ्यात्व मोहनीय इन 16 प्रकृतियों के बंध का विच्छेद होने से सास्वादन गुणस्थानक में 101 प्रकृतियों का बंध होता है ।

तथा सास्वादन गुणस्थानक के अंत में तिर्यंच त्रिक, थीणद्धि त्रिक दौर्भाग्य त्रिक का बंध विच्छेद होता है, शेष नाम गाथा 5 में है ।

विवेचन :- मिथ्यात्व के अंत में बंध विच्छेद होने वाली 16 प्रकृतियों का नाम निर्देश किया है ।

मिथ्यात्व गुणस्थानक के अंत में-

(1) नरकगति	**(2) नरकानुपूर्वी**	**(3) नरक आयुष्य**
(4) एकेन्द्रियजाति	**(5) द्वीन्द्रियजाति**	**(6) त्रीन्द्रियजाति**
(7) चतुरिन्द्रिय जाति	**(8) स्थावर**	**(9) सूक्ष्म**
(10) अपर्याप्त	**(11) साधारण**	**(12) हुंडक संस्थान**
(13) आतप	**(14) सेवार्त संघयण**	**(15) नपुंसकवेद**

(16) मिथ्यात्व इन 16 प्रकृतियों के बंध का अंत आ जाता है ।

अर्थात् मिथ्यात्व के कारण ही इन प्रकृतियों का बंध होता है । दूसरे गुणस्थानक में मिथ्यात्व का अभाव होने से इन 16 प्रकृतियों का बंध नहीं होता है ।

117 में से 16 प्रकृतियाँ कम हो जाने से **सास्वादन गुणस्थानक** में 101 कर्म प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

(3) मिश्र गुणस्थानक

अण-मज्झागिइ-संघयण, चउनिउज्जोअ कुखगइत्थित्ति ।
पणवीसंतो मीसे, चउसयरि दुआउ अ अबंधा ।।5।।

शब्दार्थ :-

अण=अनंतानुबंधी	**पणवीसंतो=**पच्चीस का अंत
मज्झागिइ=मध्य के संस्थान	**मीसे=**मिश्र गुणस्थानक में
संघयण=मध्य के संघयण	**चउसयरि=**चोहत्तर (74)
चउ=चतुष्क	**दुआउ=**दो आयुष्य
निउज्जोअ=नीच गोत्र, उद्योत	**अ=**तथा
कुखगइ=अशुभ विहायोगति	**अबंधा=**अबंध है
त्थित्ति=स्त्रीवेद	

भावार्थ :- तिर्यंच त्रिक, थीणद्धि (स्त्यानर्द्धि) त्रिक, दौर्भाग्य त्रिक, अनंतानुबंधी चतुष्क, मध्य संघयण और मध्य संस्थान, नीच गोत्र, उद्योत, अशुभविहायोगति और स्त्रीवेद इन 25 प्रकृतियों के बंध का विच्छेद होने से मिश्र गुणस्थानक में 74 कर्म- प्रकृतियों का बंध होता है, वहाँ दो आयुष्य का अबंध है ।

विवेचन :- सास्वादन गुणस्थानक के अंत में 25 कर्म प्रकृतियों के बंध का विच्छेद होता है–

(1) तिर्यंच गति (2) तिर्यंचानुपूर्वी (3) तिर्यंच आयुष्य (4) थीणद्धि निद्रा (5) निद्रा निद्रा (6) प्रचला-प्रचला (7) दौर्भाग्य (8) दुस्वर (9) अनादेय (10) अनंतानुबंधी क्रोध (11) अनंतानुबंधी मान (12) अनंतानुबंधी माया (13) अनंतानुबंधी लोभ (14) न्यग्रोध परिमंडल (15) सादि (16) वामन (17) कुब्ज (18) ऋषभ नाराच (19) नाराच (20) अर्ध नाराच (21) कीलिका संघयण (22) नीचगोत्र (23) उद्योत (24) अशुभ विहायोगति और (25) स्त्रीवेद ।

तिर्यंचत्रिक आदि 25 कर्म प्रकृतियों का बंध अनंतानुबंधी कषाय का उदय होने पर ही होता है । अनंतानुबंधी का उदय पहले व दूसरे गुणस्थानक तक ही है । तीसरे आदि गुणस्थानकों में अनंतानुबंधी का उदय नहीं है, अतः इन प्रकृतियों का आगे के गुणस्थानकों में बंध नहीं होता है ।

अतः 101 में से 25 घटाने पर 76 प्रकृतियाँ रहती हैं, परंतु मिश्र गुणस्थानक में न तो किसी जीव का मरण होता है और न ही परभव संबंधी आयुष्य का बंध होता है ।

चार प्रकार के आयुष्य में से नरक और तिर्यंच के आयुष्य का बंध पहले दो गुणस्थानक तक ही होता है । **देव व मनुष्य के आयुष्य का भी इस गुणस्थानक में अबंध होने से 76 में 2 कम करने पर 74 प्रकृतियों का बंध इस मिश्र गुणस्थानक में होता है ।**

उतार-चढ़ाव के परिणाम को 'घोलना' के परिणाम कहते हैं, उसी में आयुष्य का बंध होता है ।

मिश्र गुणस्थानक में घोलना' के परिणाम का अभाव होने से मिश्र गुणस्थानक में आयुष्य का बंध नहीं होता है ।

(4) अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक

(5) देशविरत गुणस्थानक, (6) प्रमत्त संयत गुणस्थानक

सम्मे सगसयरि जिणाउ, बंधि वइर-नर-तिय-बिय-कसाया ।
उरल-दुगंतो देसे, सत्तट्ठी तिअ कसायंतो ।।6।।

शब्दार्थ :-

सम्मे=सम्यक्त्व	**बिय-कसाया=**अप्रत्याख्यानीय कषाय चतुष्क
सगसयरि=सितत्तर (77)	**उरल-दुग=**औदारिक द्विक
जिणाउ=तीर्थंकरनाम, आयुद्वय	**अंतोदेसे=**देशविरति के अंत में
बंधि=बंध	**सत्तट्ठी=**सड़सठ (67)
वइर=वज्रऋषभनाराच संघयण	**तिअ कसायंतो=**प्रत्याख्यानीय कषाय का अंत
नर-तिय=मनुष्यत्रिक	

भावार्थ :- अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में तीर्थंकर नाम कर्म और दो आयुष्य का बंध होने से 77 प्रकृतियों का बंध हो सकता है ।

वज्रऋषभ नाराच, मनुष्यत्रिक, अप्रत्याख्यानावरण कषाय तथा औदारिक द्विक का अंत होने से देशविरति गुणस्थानक में 67 कर्म प्रकृति का बंध होता है ।

पाँचवें गुणस्थानक के अंत में प्रत्याख्यानावरण चतुष्क का बंध विच्छेद होने से छठे प्रमत्त संयत गुणस्थानक में 63 प्रकृति का बंध होता है ।

विवेचन :- अविरत सम्यग् दृष्टि गुणस्थानक में 77 प्रकृति का बंध ।

चौथे गुणस्थानक में सम्यक्त्व की उपस्थिति होने से तीर्थंकर नाम कर्म का बंध हो सकता है । घोलना परिणाम का सद्भाव होने से सम्यग्दृष्टि मनुष्य और सम्यग्दृष्टि तिर्यंच-देव आयुष्य का बंध करते हैं ।

सम्यग्दृष्टि देव और सम्यग्दृष्टि नारक-मनुष्य आयुष्य का बंध करते है ।

अतः मिश्र गुणस्थानक की 74 प्रकृतियों में अबंध में रही 3 प्रकृति (तीर्थंकर नाम कर्म, मनुष्यायुष्य और देवायुष्य) जोडने पर 4 थें अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 77 प्रकृतियों का बंध होता है ।

पाँचवे देशविरति गुणस्थानक में 67 कर्मप्रकृति का बंध ।

10 प्रकृति का बंध विच्छेद होता है ।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक के अंत में

(1) वज्र ऋषभ नाराच संघयण, (2) मनुष्य गति, (3) मनुष्यानुपूर्वी, (4) मनुष्य आयुष्य, (5) अप्रत्याख्यानीय क्रोध (6) अ. मान, (7) अ. माया, (8) अ. लोभ (9) औदारिक शरीर (10) औदारिक अंगोपांग ।

इन 10 प्रकृतियों के बंध का विच्छेद होता है ।

पाँचवें आदि गुणस्थानकों में मनुष्य भव योग्य कर्म प्रकृतियों का बंध न होकर देव भव योग्य प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी और मनुष्य आयुष्य सिर्फ मनुष्यभव में ही उदय में आता है । इसी तरह वज्रऋषभनाराच संघयण, औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांग- ये तीन प्रकृतियाँ भी मनुष्य-तिर्यंच भव में ही भोगने योग्य होने से पाँचवें आदि गुणस्थानकों में उनका बंध नहीं होता है ।

जिस गुणस्थानक में जिस कषाय का उदय हो, उसी गुणस्थानक तक उस कषाय का बंध हो सकता है ।

अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय चौथे गुणस्थानक के अंतिम समय तक हो सकता है, पाँचवें गुणस्थानक में इस कषाय का उदय नहीं होता है ।

देशविरति गुणस्थानक में मनुष्य भव के योग्य कर्म प्रकृतियों का बंध नहीं होता है, अतः औदारिक शरीर आदि तीन प्रकृतियों का भी बंध नहीं होता है ।

अतः अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक की 77 प्रकृति में से 10 प्रकृति कम करने पर देशविरति गुणस्थानक में 67 प्रकृति का बंध होता है ।

छठे प्रमत्त संयत गुणस्थानक में 63 प्रकृति का बंध

देशविरति के अंत में 4 का बंध विच्छेद होता है– (1) प्रत्याख्यानीय क्रोध, (2) प्र. मान, (3) प्र.माया, (4) प्र. लोभ ।

पाँचवें गुणस्थानक तक प्रत्याख्यानीय कषाय का उदय होता है, उसके आगे नहीं । अतः उसका बंध भी पाँचवें गुणस्थानक तक ही होता है ।

छठे गुणस्थानक में 4 प्रत्याख्यानीय क्रोध, मान, माया और लोभ का बंधविच्छेद हो जाने से वहाँ 63 प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

(7) अप्रमत्त संयत गुणस्थानक

तेवट्ठि पमत्ते सोग, अरइ अथिरदुग अजस अस्सायं ।
वुच्छिज्ज छच्च सत्त व नेइ सुराउं जया निट्ठं ।।7।।
गुणसट्ठि अपमत्ते, सुराउ बंधंतु जइ इहागच्छे ।
अन्नह अट्ठावन्ना, जं आहारगदुगं बंधे ।।8।।

शब्दार्थ :-

तेवट्ठि=तिरेसठ (63)
पमत्ते=प्रमत्त गुणस्थानक में
सोग=शोक
अरइ=अरति
अथिरदुग=अस्थिर द्विक
अजस=अपयश
अस्सायं=अशाता वेदनीय
वुच्छिज्ज=विच्छेद
छच्च=छह
सत्त=सात
व=अथवा
नेइ=ले जाता है
सुराउं=देव आयुष्य
जया=जब
निट्ठं=समाप्त
गुणसट्ठि=उनसाठ
अपमत्ते=अप्रमत्त गुणस्थानक में
सुराउ=देव आयुष्य
बंधंतु=बाँधता हुआ
जइ=यदि
इह=यहाँ
आगच्छे=आए
अन्नह=अन्यथा
अट्ठावन्ना=अट्ठावन 58
जं=यदि
आहारगदुगं=आहारक द्विक
बंधे=बाँधता है

भावार्थ :- छठे गुणस्थानक के अंत में शोक, अरति, अस्थिर द्विक, अपयश और अशाता वेदनीय इन छह प्रकृतियों का बंधविच्छेद होता है अथवा देव आयुष्य के बंध का विच्छेद करे तो सात कर्म प्रकृति का बंधविच्छेद होता है ।

यदि देव आयुष्य का बंध करते हुए कोई जीव अप्रमत्त गुणस्थानक को प्राप्त करता है तो 59 प्रकृतियों का बंध होता है, अन्यथा 58 प्रकृतियों का बंध होता है, क्योंकि यहाँ आहारक द्विक का बंध होता है ।

विवेचन :– अप्रमत्त गुणस्थानक में 58/59 का बंध ।

छठे प्रमत्त गुणस्थानक के अंत में 6 या 7 का बंधविच्छेद :-

(1) शोक, (2) अरति, (3) अस्थिर, (4) अशुभ, (5) अपयश और (6) अशातावेदनीय–इन छह प्रकृतियों का बंध प्रमाद दशा में ही होता है । छठे गुणस्थानक के अंत में प्रमाद दशा का नाश हो जाने से शोक आदि के बंध का विच्छेद हो जाता है ।

6 या 7 का विकल्प

कोई जीव छठे गुणस्थानक में देव आयुष्य के बंध का प्रारंभ कर जीव विशुद्धि द्वारा 7वें गुणस्थानक में चला जाता है और वहाँ जाकर देवायु का बंध पूरा करता है । उस जीव की अपेक्षा से देवायु के बंध का विच्छेद सातवें गुणस्थानक में होता है ।

जो जीव छठे गुणस्थानक में ही देवायु के बंध का प्रारंभ कर उसी गुणस्थानक में देवायु का बंध पूरा कर देता है, उस जीव की अपेक्षा देवायु का विच्छेद छठे गुणस्थानक में हो जाता है ।

इस प्रकार छठे के अंत में 6 या 7 प्रकृतियों के बंध का विच्छेद होता है ।

आहारकद्विक का बंध

इस गुणस्थानक पर अध्यवसायों की विशुद्धि के कारण (1) आहारक शरीर (2) आहारक अंगोपांग का बंध हो सकता है ।

अतः जो जीव प्रमत्त गुणस्थानक में देवायु का बंध प्रारंभ कर वहीं पर देवायु का बंध पूरा कर देता है, उस जीव की अपेक्षा प्रमत्त संयतगुणस्थानक की 63 प्रकृति में से 7 प्रकृति कम करने पर (63-7=)56 प्रकृति तथा उसमें आहारक द्विक को जोड़ने से 58 प्रकृति का बंध होता हैं ।

59 का बंध

जो जीव छठे गुणस्थानक में देवायु के बंघ का प्रारंभ कर सातवें में देवायु का बंध पूरा करता है, वह अरति आदि छह का बंध नहीं करने से 63-6=57 प्रकृतियाँ रहती हैं, उसके आहारक द्विक को जोड़ने से 57+2=59 प्रकृतियों का बंध होता है ।

(8) अपूर्वकरण गुणस्थानक

अडवन्न अपुव्वाईम्मि, निद्ददुगंतो छप्पन्न पण भागे ।
सुरदुग-पणिंदि-सुख-गइ, तस-नव उरलविणु-तणुवंगा ।।9।।
समचउर-निमिण-जिण-वन्न-अगुरुलहु-चउ-छलंसि तीसंतो ।
चरमे छवीस बंधो, हास-रई-कुच्छ-भयभेओ ।।10।।

शब्दार्थ :-

अडवन्न=अट्ठावन (58)
अपुव्वाईम्मि=अपूर्वकरण के प्रथम भाग में
निद्ददुग=निद्रा द्विक
अंतो=अंत
छप्पन्न=छप्पन (56)
पण भागे=पाँच भाग में
सुर दुग=देव द्विक
पणिंदि=पंचेन्द्रिय
सुखगइ=शुभविहायोगति
तस नव=त्रस आदि नौ
उरल=औदारिक
विणु=बिना
तणुवंगा=शरीर-उपांग
समचउर=समचतुरस्त्र
निमिण=निर्माण
जिण=तीर्थंकर नाम कर्म
वन्न=वर्ण
अगुरुलहु=अगुरुलघु
चउ=चार
छलंसि=छठे भाग में
तीसंतो=तीस का अंत
चरमे=अंत में
छवीस=छब्बीस (26)
बंधो=बंध
हास=हास्य
रई =रति
कुच्छ=जुगुप्सा
भय=भय
भेओ=अंत

भावार्थ :- अपूर्वकरण गुणस्थानक के पहले भाग में 58 प्रकृतियों का बंध होता है । वहाँ निद्राद्विक का अंत होता है । अर्थात् दूसरे से छठे भाग तक के 5 भाग में 56 प्रकृतियों का बंध होता है ।

छठे भाग के अंत में सुरद्विक, पंचेन्द्रिय जाति, शुभ विहायोगति, त्रस आदि 9, औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांग सिवाय के शरीर और अंगोपांग, समचतुरस्त्र संस्थान, निर्माण, जिननाम, वर्ण आदि चतुष्क, अगुरुलघु चतुष्क- इन 30 प्रकृतियों का बंध विच्छेद होता है अर्थात् अंतिम भाग में 26 कर्म-

प्रकृतियों का बंध होता है, वहाँ हास्य, रति, जुगुप्सा और भय के बंध का विच्छेद होता है ।

विवेचन :- आठवें अपूर्वकरण-गुणस्थानक के 7 भाग हैं ।

उसमें पहले भाग में प्रमत्त गुणस्थानक की तरह 58 कर्मप्रकृतियों का बंध होता है–

अपूर्वकरण के पहले भाग के अंत में 2 प्रकृति का बंध विच्छेद होता है- वे हैं- निद्राद्विक- अर्थात् (1) निद्रा और (2) प्रचला ।

अतः अपूर्वकरण के 2 से 6 भाग में 56 का बंध होता है । छठे भाग के अंत में 30 का बंध विच्छेद होता है-

1. देवगति, 2. देवानुपूर्वी, 3. पंचेन्द्रिय जाति, 4. शुभ विहायोगति,
5. त्रस, 6. बादर, 7. पर्याप्ता, 8. प्रत्येक,
9. स्थिर, 10. शुभ, 11. सुभग, 12. सुस्वर,
13. आदेय 14. वैक्रियशरीर, 15. वैक्रिय अंगोपांग, 16. आहारक शरीर,
17. आहारक अंगोपांग, 18. तैजस शरीर, 19. कार्मण शरीर,
20. समचतुरस्त्र संस्थान, 21. निर्माण, 22. जिन नाम,
23. वर्ण, 24. गंध, 25. रस, 26. स्पर्श,
27. अगुरूलघु, 28. उपघात, 29. पराघात, 30. उच्छ्वास ।

इन 30 प्रकृतियों का बंध देवगति के साथ होता है, अतः देवगति प्रायोग्य कहलाती है ।

आठवें गुणस्थानक के छठे भाग में 30 कर्मप्रकृति के बंध का विच्छेद होने से सातवें भाग में सिर्फ 26 प्रकृतियों का ही बंध होता है-

बंध विच्छेद

आठवें गुणस्थानक के अंत में हास्य,रति,भय और जुगुप्सा- इन चार प्रकृतियों का भी बंध विच्छेद हो जाता है ।

(9) अनिवृत्ति बादर संपराय गुणस्थानक एवं
(10) सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक

अनियट्टि भाग पणगे, इगेग-हीणो दुवीसविह बंधो ।
पुम संजलण-चउण्हं, कमेण छेओ सतर सुहुमे ।।11।।

शब्दार्थ :-

अनियट्टि=अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक में	**संजलण=**संज्वलन
भागपणगे=पाँच भाग में	**चउण्हं=**चतुष्क
इगेगहीणो=एक-एक हीन	**कमेण=**क्रमशः
दुवीसविह=बाईस प्रकार	**छेओ=**छेद
बंधो=बंध	**सतर=**सत्रह
पुम=पुरुषवेद	**सुहुमे=**सूक्ष्मसंपराय में

भावार्थ :- अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक के 5 भाग करें (1) उसके पहले भाग में 22 प्रकृति का बंध होता है, फिर पुरुषवेद और संज्वलन चतुष्क इन पाँच में से एक-एक का क्रमशः बंध-विच्छेद होता है अर्थात् सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक में 17 प्रकृति का बंध होता है ।

विवेचन :- अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक के 5 भाग करने चाहिए ।

पहले भाग में 22 का बंध

आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानक के 7 वें भाग की 26 प्रकृतिओं में से आठवें गुणस्थानक के अंत में (1) हास्य, (2) रति, (3) जुगुप्सा, (4) भय–इन चार प्रकृतियों का बंध विच्छेद होने से (26-4=) 22 का बंध होता है ।

दूसरे भाग में 21 का बंध

अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक के पहले भाग के अंत में पुरुषवेद का बंध विच्छेद हो जाने से (22-1=)21 का ही बंध होता है ।

तीसरे भाग में 20 का बंध

दूसरे भाग के अंत में संज्वलन क्रोध का बंध विच्छेद होने से (21-1=)20 का ही बंध होता है ।

चौथे भाग में 19 का बंध

तीसरे भाग के अंत में संज्वलन मान का बंध विच्छेद होने से (20-1=)19 का ही बंध होता है ।

पाँचवें भाग में 18 का बंध

चौथे भाग के अंत में संज्वलन माया का बंध विच्छेद होने से पाँचवें भाग में (19-1=)18 प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

10वें सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक में 17 का बंध

नौवें गुणस्थानक के अंत में संज्वलन लोभ का विच्छेद होने से 10वें सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक में (18-1=) 17 प्रकृतियों का ही बंध होता है ।

(11) उपशांत मोह गुणस्थानक, (12) क्षीण मोह गुणस्थानक (13) सयोगी केवली गुणस्थानक एवं (14) अयोगी केवली गुणस्थानक

चउ-दंसणुच्च-जस-नाण- विग्घ-दसगं ति सोलसुच्छेओ ।
तिसु सायबंध छेओ, सजोगि बंधं तुऽणंतो अ ।।12।।

शब्दार्थ :-

चउ=चार	**उच्छेओ=**उच्छेद
दंसण=दर्शनावरणीय	**तिसु=**तीन में
उच्च=ऊच्चगोत्र	**सायबंध=**शाता का बंध
जस=यश	**छेओ=**विच्छेद
नाण=ज्ञानावरणीय	**सजोगि=**सयोगी गुणस्थानक में
विग्घ=अंतराय	**बंधं=**बंध
दसगं=दश	**तु=**पादपूर्ती के लिए
सोलस=सोलह	**अणंतो=**अंत नहीं

भावार्थ :- दर्शनावरणीय की 4, उच्च गोत्र, यश, ज्ञानावरणीय की 5 और अंतराय की 5, इन सोलह प्रकृतियों का 10वें गुणस्थानक के अंत में बंधविच्छेद होता है अर्थात् 11-12 व 13वें गुणस्थानक में सिर्फ शातावेदनीय का ही बंध होता है ।

सयोगी गुणस्थानक के अंत में शातावेदनीय का भी बंध उच्छेद हो जाता है ।

इस प्रकार बंध के हेतुओं का अभाव होने से बंध का अंत आ जाता है ।

विवेचन :-

11, 12 व 13वें गुणस्थानक में एक का बंध

10वें गुणस्थानक के अंत में 16 का बंध विच्छेद होता है–

1. चक्षु दर्शनावरणीय	**2. अचक्षु दर्शनावरणीय**
3. अवधि दर्शनावरणीय	**4. केवल दर्शनावरणीय**
5. उच्च गोत्र	**6. यश:कीर्ति**
7. मतिज्ञानावरणीय	**8. श्रुतज्ञानावरणीय**
9. अवधिज्ञानावरणीय	**10. मन:पर्यवज्ञानावरणीय**
11. केवलज्ञानावरणीय	**12. दानान्तराय**
13. लाभांतराय	**14. भोगांतराय**
15. उपभोगांतराय	**16. वीर्यांतराय**

इन 16 प्रकृतियों के बंध का कारण कषाय का उदय है । 10वें गुणस्थानक के अंत में कषाय का अभाव हो जाने से इन प्रकृतियों के बंध का भी अभाव हो जाता है ।

उपशांत मोह, क्षीण मोह और सयोगी गुणस्थानक में एक मात्र योग जन्य शातावेदनीय कर्म का बंध होता है ।

कषाय के अभाव में मात्र योग से प्रकृति बंध और प्रदेश बंध होता है । प्रथम समय में शातावेदनीय का बंध होता है, दूसरे समय में वह कर्म उदय में आता है और तीसरे समय में वह कर्म क्षीण हो जाता है ।

14वें अयोगी गुणस्थानक में अबंधक

13वें के अंत में 1 का भी बंध विच्छेद होता है ।

13वें गुणस्थानक में जब अन्तर्मुहूर्त जितना आयुष्य बाकी हो तब योगनिरोध करते हैं । योग का निरोध हो जाने से योगजन्य शातावेदनीय के बंध का भी विच्छेद हो जाता है ।

अत: अयोगी गुणस्थानक में किसी भी प्रकार के कर्म का बंध नहीं होता है, अत: उन्हें अबंधक कहा है ।

14 बंध यंत्र

क्रम	गुणस्थानक नाम	मूल प्रकृति	उत्तर प्रकृति	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय	अबंध
	सामान्य	8	120	5	9	2	26	4	67	2	5	0
1	मिथ्यात्व	8	117	5	9	2	26	4	64	2	5	3
2	सास्वादन	8	101	5	9	2	24	3	51	2	5	19
3	मिश्र	7	74	5	6	2	19	0	36	1	5	46
4	अविरत स.दृ.	8	77	5	6	2	19	2	37	1	5	43
5	देशविरत	8	67	5	6	2	15	1	32	1	5	53
6	प्रमत्तसंयत	8	63	5	6	2	11	1	32	1	5	57
7	अप्रमत्त संयत	8,7	59,58	5	6	1	9	1,0	31	1	5	61/62
8	अपूर्वकरण भाग 1	7	58	5	6	1	9	0	31	1	5	62
	अपूर्वकरण भाग 2	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5	64
	अपूर्वकरण भाग 3	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5	64
	अपूर्वकरण भाग 4	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5	64
	अपूर्वकरण भाग 5	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5	64
	अपूर्वकरण भाग 6	7	56	5	4	1	9	0	31	1	5	64
	अपूर्वकरण भाग 7	7	26	5	4	1	9	0	1	1	5	94
9	अनिवृत्तिकरण भाग 1	7	22	5	4	1	5	0	1	1	5	98
	अनिवृत्तिकरण भाग 2	7	21	5	4	1	4	0	1	1	5	99
	अनिवृत्तिकरण भाग 3	7	20	5	4	1	3	0	1	1	5	100
	अनिवृत्तिकरण भाग 4	7	19	5	4	1	2	0	1	1	5	101
	अनिवृत्तिकरण भाग 5	7	18	5	4	1	1	0	1	1	5	102
10	सूक्ष्मसंपराय	6	17	5	4	1	0	0	1	1	5	103
11	उपशांतमोह	1	1	0	0	1	0	0	0	0	0	119
12	क्षीणमोह	1	1	0	0	1	0	0	0	0	0	119
13	सयोगी केवली	1	1	0	0	1	0	0	0	0	0	119
14	अयोगी केवली	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	120

15 गुणस्थानकों के बंध विच्छेदादि प्रकृतियाँ

गुण-स्थानक	प्रकृति	बंध विच्छेद प्रकृतियां	अबंध प्रकृति
सामान्य से	120		
1	117		आहा.2 जिननाम
2	101	नरक 3, जाति 4, स्थावर 4, नपुंसक 4◆, आतप	
3	74	अनंतानुबंधि 4, मध्यम संघयण 4, मध्यम संस्थान 4, तिर्यंच 3, दुर्भग 3, थीणद्धि 3, स्त्रीवेद, अशुभ विहायोगति, नीचगोत्र, उद्योत	मनुष्यायुष्य और देवायुष्य
4	77	जिननाम, देव और मनुष्यायुष्य का बंध होता है	
5	67	वज्रऋषभनाराच, औदारिक 2, मनुष्य 3, अप्रत्याख्यानीय 4	
6	63	प्रत्याख्यानीय 4	
7	59 / 58	अशाता, शोक, अरति, अस्थिर, अशुभ, अपयश । आहारक 2, का बंध होता है । यहाँ देवायुष्य बांधता हुआ आये तो 59 और देवायुष्य बांध कर आये तो 58	
8/1	58		
8/2 से 6	56	निद्रा 2,	
8/7	26	देव 2, जाति 1, शरीर 4, अंगोपांग 2, वर्ण 4, शुभ विहायोगति, समचतुरस्र सं., प्रत्येक 6, त्रस 9,	
9/1	22	हास्य, रति, भय, जुगुप्सा	
9/2	21	पुरुषवेद	
9/3	20	संज्वलन क्रोध	
9/4	19	संज्वलन मान	
9/5	18	संज्वलन माया	
10	17	संज्वलन लोभ	
11	1	ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 4, अंतराय 5, यश, उच्चगोत्र	
12	1		
13	1		
14	0	शातावेदनीय	

◆ नपुंसक 4 = नपुंसकवेद, मिथ्यात्व, हुंडक, सेवार्त ।

16 उदय विधान

1. मिथ्यात्व गुणस्थानक

उदओ विवाग वेअण-मुदीरणमपत्ति इह दुवीससयं ।
सतरसयं मिच्छे मीस, सम्म-आहार-जिणणुदया ।।13।।

शब्दार्थ :-

उदओ=उदय	**सतरसयं=**एक सो सत्रह (117)
विवागवेअण=विपाक का वेदन	**मिच्छे=**मिथ्यात्व में
उदीरणं=उदीरणा	**मीस=**मिश्र मोहनीय
अपत्ति=अप्राप्त	**सम्म=**सम्यक्त्व मोहनीय
इह=यहाँ	**आहार=**आहारक
दुवीससयं=एक सो बाईस (122)	**जिण=**जिननामकर्म
	अणुदया=उदय नहीं होने से

भावार्थ :- कर्म के फल का अनुभव करना, उसे उदय कहते हैं। उदय काल को प्राप्त नहीं हुए कर्मदलिकों को प्रयत्नपूर्वक उदय में लाना, उसे उदीरणा कहते हैं।

उदय और उदीरणा में कुल 122 प्रकृतियाँ हैं। मिथ्यात्व गुणस्थानक में मिश्रमोहनीय, समकित मोहनीय, आहारक द्विक और जिननामकर्म- इन 5 प्रकृतियों का उदय नहीं होने से 117 प्रकृतियों का ही उदय होता है।

विवेचन :- कर्म के बंध और उदय में अंतर है। पाप प्रकृतियों का बंध तो व्यक्ति मजे से करता है। पाप करते-करते भी आनंद आता है, परंतु पाप का उदय बहुत ही भयंकर होता है।

पुण्य बाँधते समय थोड़ा कष्ट पडता है, परंतु पुण्य का उदय सुखदायी होता है। कर्मबंध के बाद जब तक आबाधाकाल पूर्ण नहीं होता है, तब तक कर्म उदय में नहीं आता है।

बंध योग्य 120 प्रकृतियाँ हैं, जबकि उदय योग्य 122 प्रकृतियाँ हैं, इसका कारण यह है, कि मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय का स्वतंत्र रूप से बंध नहीं होता है। परंतु मिथ्यात्व मोहनीय के ही कर्मदलिक शुद्ध और अर्ध

शुद्ध होने पर समकित मोहनीय और मिश्र मोहनीय में बदल जाते हैं। इन दो प्रकृतियों की वृद्धि हो जाने से उदय में 122 प्रकृतियाँ हो जाती हैं।

पहले मिथ्यात्व गुणस्थानक में 117 का उदय

मिथ्यात्व गुणस्थानक में (1) मिश्र मोहनीय (2) समकित मोहनीय, (3) आहारक शरीर (4) आहारक अंगोपांग (5) तीर्थंकर नाम कर्म का उदय नहीं होता है, क्योंकि मिश्र मोहनीय का उदय सिर्फ मिश्र गुणस्थानक में ही होता है। सम्यक्त्व मोहनीय का उदय क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि को ही होता है, अतः उसका उदय चौथे से सातवें गुणस्थानक तक होता है।

आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग का उदय प्रमत्त गुणस्थानक में ही होता है, उसके सिवाय के गुणस्थानक में आहारक द्विक का उदय नहीं होता है।

तीर्थंकर नाम कर्म का उदय 13 और 14वें गुणस्थानक में होता है, अतः इन पाँच प्रकृतियों के उदय का अभाव होने से मिथ्यात्व गुणस्थानक में 117 प्रकृतियों का ही उदय होता है।

अनुदय और उदयविच्छेद में अंतर

जिस गुणस्थानक में जिस प्रकृति का अनुदय कहा हो उस गुणस्थानक में उस प्रकृति का उदय नहीं होता है परंतु आगे के गुणस्थानकों में उस प्रकृति का उदय हो सकता है। परंतु जिस प्रकृति का जिस गुणस्थानक में उदय विच्छेद कहा हो, उस प्रकृति का उसके आगे के गुणस्थानक में उदय नहीं होता है।

2. सास्वादन गुणस्थानक

सुहुमतिगायव मिच्छं मिच्छत्तं सासणे इगारसयं।
निरयाणु पुव्विणुदया, अण थावर इग विगलअंतो ॥14॥

शब्दार्थ :-

सुहुमतिग=सूक्ष्मत्रिक	**निरयाणु पुव्वि=**नरकानुपूर्वी
आयव=आतप	**अणुदया=**अनुदय
मिच्छं=मिथ्यात्व	**अण=**अनंतानुबंधी
मिच्छत्तं=मिथ्यात्व	**थावर=**स्थावर
सासणे=सास्वादन में	**इग=**एकेन्द्रिय
इगार सयं=एक सौ ग्यारह	**विगलअंतो=**विकलेन्द्रिय का अंत

भावार्थ :- मिथ्यात्व गुणस्थानक के अंत में सूक्ष्मत्रिक, आतप और मिथ्यात्व मोहनीय का उच्छेद होता है ।

सास्वादन गुणस्थानक में नरकानुपूर्वी का अनुदय होने से 111 प्रकृति का उदय होता है ।

सास्वादन गुणस्थानक के अंत में अनंतानुबंधी चतुष्क, स्थावर, एकेन्द्रिय जाति और विकलेन्द्रिय जाति का उदय विच्छेद होता है ।

विवेचन :- दूसरे सास्वादन गुणस्थानक में 111 का उदय ।

मिथ्यात्व के अंत में 5 का उच्छेद-मिथ्यात्व गुणस्थानक के अंत में (1) सूक्ष्म, (2) अपर्याप्त, (3) साधारण, (4) आतप और (5) मिथ्यात्व मोहनीय–इन पाँच प्रकृतियों का उदय विच्छेद होता है । आगे के गुणस्थानकों में इनका उदय नहीं होता है ।

सूक्ष्म नामकर्म का उदय सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों को होता है । अपर्याप्ता नाम कर्म का उदय लब्धि अपर्याप्ता एकेन्द्रिय जीवों को होता है और साधारण नाम कर्म का उदय साधारण वनस्पतिकाय के जीवों को होता है- वे जीव सास्वादन गुणस्थानक प्राप्त नहीं करते हैं ।

उपशम सम्यक्त्व से च्युत होने वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्ता जीव ही सास्वादन गुणस्थानक को प्राप्त करते हैं । वे जीव सास्वादन गुणस्थानक में मरण पाएँ तो लब्धि पर्याप्ता नाम कर्म के उदयवाले पृथ्वी, अप्, प्रत्येक वनस्पति और विकलेन्द्रिय में ही उत्पन्न होते हैं परंतु सूक्ष्म एकेन्द्रिय, लब्धि अपर्याप्ता एकेन्द्रिय आदि या साधारण वनस्पति में उत्पन्न नहीं होते हैं ।

मिथ्यात्व गुणस्थानक के अंत में आतप नाम कर्म का भी उच्छेद हो जाता है, क्योंकि इस नाम कर्म का उदय सूर्यविमान के नीचे रहे मणिरत्नों में बादर पृथ्वीकाय के जीवों को शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने पर आतप नाम कर्म का उदय होता है- उस समय सास्वादन गुणस्थानक नहीं होता है ।

सास्वादन गुणस्थानक में रहा जीव मरकर नरक गति में भी नहीं जाता है, अतः सास्वादन गुणस्थानक में नरकानुपूर्वी का भी उदय नहीं होता है ।

इस प्रकार पहले गुणस्थानक में उदययोग छह प्रकृतियों को कम करने पर दूसरे गुणस्थानक में 111 प्रकृतियों का उदय माना गया है ।

सास्वादन के अंत में 9 का उदय विच्छेद

सास्वादन गुणस्थानक के अंत में अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ, स्थावर, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति- इन 9 प्रकृतियों के उदय का विच्छेद हो जाता है ।

अनंतानुबंधी का उदय सम्यक्त्व का घात करता है, अतः मिश्र आदि गुणस्थानकों में अनंतानुबंधी का उदय नहीं होता है ।

एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक के जीवों को उपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं होता है, अतः उपशम सम्यक्त्व से गिरकर सास्वादन में भी नहीं जाते हैं, अतः सास्वादन गुणस्थानक के अंत में अनंतानुबंधी चार और स्थावर आदि पाँच का उदय विच्छेद होता है ।

3. मिश्र गुणस्थानक, 4. अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक 5. देश विरत गुणस्थानक

मीसे सयमणु पुव्वीऽणुदया, मीसोदएण मीसंतो ।
चउ सयमजए सम्माऽणु पुव्वि खेवा बिअकसाया ।।15।।
मणु तिरिणु पुव्वि विउवट्ठ, दुहग अणाइज्जदुग सतर छेओ ।
सगसीइ देसि तिरिगइ-आउ निउज्जोअ तिकसाया ।।16।।

शब्दार्थ :-

मीसे=मिश्र गुणस्थानक में
सयं=सो (100)
अणुपुव्वीणुदया=आनुपूर्वी के अनुदय से
मीसोदयेण=मिश्र के उदय से
मीसंतो=मिश्र के अंत में
चउ सयं=एक सो चार (104)
अजए=अविरति गुणस्थानक में
सम्म=सम्यक्त्व मोहनीय
आणुपुव्वि=आनुपूर्वी
खेवा=डालने से
बिअकसाया=दूसरे अप्रत्याख्यानीय कषाय
मणु=मनुष्य
तिरिणु पुव्वि=तिर्यंचानुपूर्वी
विउवट्ठ=वैक्रिय अष्टक
दुहग=दौर्भाग्य
अणाइज्जदुग=अनादेय द्विक
सतर=सत्रह
छेओ=छेद
सगसीइ=सत्याशी
देसि=देशविरति गुणस्थानक में

तिरिगइ=तिर्यंच गति	**निउज्जोय=**नीच गोत्र, उद्योत
आउ=आयुष्य	**तिकसाया=**प्रत्याख्यानीय कषाय

भावार्थ :- आनुपूर्वी का अनुदय तथा मिश्र मोहनीय का उदय होने से मिश्र गुणस्थानक में उदय में 100 कर्मप्रकृति होती हैं। वहाँ मिश्र मोहनीय का उदय विच्छेद होता है।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में सम्यक्त्व मोहनीय और आनुपूर्वी चतुष्क को जोड़ने से 104 प्रकृति का उदय होता है।

चौथे गुणस्थानक के अंत में अप्रत्याख्यानीय कषाय, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, वैक्रिय अष्टक, दौर्भाग्य अनादेय द्विक- इन 17 कर्म प्रकृति का उदय विच्छेद होता है।

देशविरत गुणस्थानक में 87 कर्मप्रकृति उदय में होती है। देशविरति के अंत में तिर्यंच गति, तिर्यंच आयुष्य, नीच गोत्र, उद्योत नाम कर्म तथा तीसरे प्रत्याख्यानीय कषाय के उदय का विच्छेद होता है।

विवेचन :- तीसरे मिश्र गुणस्थानक में 100 का उदय

सास्वादन गुणस्थानक में 111 प्रकृति का उदय होता है। उस गुणस्थानक के अंत में 9 प्रकृतियों का उदय विच्छेद होता है। 111 में से 9 कम करने पर 102 रहती है। फिर मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी और देवानुपूर्वी कम करने पर 99 रहेगी, उसमें मिश्र मोहनीय का उदय जोड़ने पर 99+1=100 प्रकृति का उदय होगा।

भवांतर में जाने वाले जीव को ही आनुपूर्वी का उदय होता है। मिश्र गुणस्थानक में किसी जीव की मृत्यु नहीं होती है। अतः चारों आनुपूर्वी का उदय भी नहीं होता है।

सास्वादन गुणस्थानक में नरकानुपूर्वी का अनुदय कहा, अब शेष मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी और देवानुपूर्वी का भी अनुदय तीसरे गुणस्थानक में रहता है।

मिश्र मोहनीय का उदय मिश्र गुणस्थानक में ही होता है- आगे के गुणस्थानकों में उसका उदय विच्छेद होता है।

चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक में 104 का उदय

मिश्र गुणस्थानक में 100 कर्मप्रकृति का उदय होता है। मिश्र गुणस्थानक

के अंत में मिश्र मोहनीय का उदय विच्छेद होता है, परंतु चौथे गुणस्थानक में सम्यक्त्व मोहनीय का उदय होता है ।

अतः एक प्रकृति घटती है और एक प्रकृति के बढ़ने से वो ही संख्या रहती है ।

इसके साथ ही चौथे गुणस्थानक से मरकर जीव चारों गति में उत्पन्न हो सकता है, अतः इस गुणस्थानक में चारों आनुपूर्वी का उदय होने से 100+4=104 कर्म प्रकृति का उदय होता है ।

पांचवे देशविरति गुणस्थानक में 87 प्रकृति का उदय

चौथे गुणस्थानक के अंत में

(1) अप्रत्याख्यानीय क्रोध, (2) मान, (3) माया, (4) लोभ, (5) मनुष्यानुपूर्वी, (6) तिर्यंचानुपूर्वी, (7) वैक्रिय शरीर, (8) वैक्रिय अंगोपांग, (9) देव गति, (10) देवानुपूर्वी, (11) देव आयुष्य, (12) नरक गति, (13) नरकानुपूर्वी, (14) नरक आयुष्य, (15) दौर्भाग्य, (16) अनादेय और (17) अपयश-इन सत्रह प्रकृतियों का उदय विच्छेद होने से देशविरति गुणस्थानक में 104-17=87 कर्म प्रकृति का उदय होता है ।

अप्रत्याख्यानीय कषाय के उदय में देशविरति गुणस्थानक की प्राप्ति नहीं होती है, क्योंकि अप्रत्याख्यानीय कषाय का उदय देशविरति में बाधक है ।

आनुपूर्वी का उदय पर-भव में जाते समय ही होता है । देशविरति और उसके ऊपर के गुणस्थानकों में आनुपूर्वी का उदय नहीं होता है, अतः चौथे गुणस्थानक के अंत में ही आनुपूर्वी का उदय विच्छेद हो जाता है ।

वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, देवगति, देव आयुष्य, नरक गति, नरक आयुष्य- इन छ प्रकृतियों का उदय देव व नारकी को ही होता है । देव व नारक अधिकतम चार गुणस्थानक को ही प्राप्त कर सकते हैं, अतः देशविरति गुणस्थानक में इन छह प्रकृतियों का उदय नहीं होता है ।

देशविरत गुणस्थानक के अंत में 8 का उदय विच्छेद

देशविरत गुणस्थानक के अंत में (1) तिर्यंच गति, (2) तिर्यंच आयुष्य,

(3) नीच गोत्र, (4) उद्योत तथा (5) प्रत्याख्यानीय क्रोध, (6) मान, (7) माया और (8) लोभ इन आठ प्रकृतियों का उदय विच्छेद हो जाता है, अर्थात् आगे के गुणस्थानक में इन आठ प्रकृतियों का उदय नहीं होता है ।

(6) प्रमत्त संयत गुणस्थानक एवं (7) अप्रमत्त संयत गुणस्थानक

अट्ठच्छेओ इगसी, पमत्ति आहार जुअ(ग)ल पक्खेवा ।
थीणतिगाहारगदुअ छेओ छस्सयरि अपमत्ते ।।17।।

शब्दार्थ :-

अट्ठच्छेओ=आठ का छेद	**थीण तिग**=थीणद्धि त्रिक
इगसी=इक्यासी	**आहारगदुअ**=आहारक द्विक
पमत्ति=प्रमत्त संयत में	**छेओ**=छेद
आहार जुअ(ग)ल=आहारक द्विक	**छसयरि**=76
पक्खेवा=प्रक्षेप से	**अपमत्ते**=अप्रमत्त संयत में

भावार्थ :- आठ कर्मप्रकृति का उदय विच्छेद होने से और आहारक द्विक को जोड़ने से प्रमत्त गुणस्थानक में 81 प्रकृति का उदय होता है । वहाँ थीणद्धि त्रिक और आहारक द्विक का उदय विच्छेद होने से अप्रमत्त संयत गुणस्थानक में 76 कर्म प्रकृति का उदय होता है ।

विवेचन :- छठे प्रमत्त संयत गुणस्थानक में 81 प्रकृति का उदय

देशविरत गुणस्थानक के अंत में 8 प्रकृति का उदय विच्छेद होने से 87-8=79 रहती हैं । उसमें आहारक द्विक को जोड़ने से 79+2=81 कर्म प्रकृति का उदय होता है ।

आहारक द्विक का बंध अप्रमत्त संयत गुणस्थानक में होता है, परंतु आहारक शरीर की रचना करना प्रमाद होने से उसका उदय प्रमत्त गुणस्थानक में ही होती है । अतः यहाँ आहारक द्विक को जोड़ा गया ।

सातवें अप्रमत्त संयत गुणस्थानक में 76 का उदय

प्रमत्त गुणस्थानक के अंत में (1) निद्रा निद्रा, (2) प्रचला प्रचला, (3) थीणद्धि, (4) आहारक शरीर और (5) आहारक अंगोपांग- इन 5 प्रकृतियों के उदय का विच्छेद होने से अप्रमत्त संयत गुणस्थानक में 76 प्रकृतियों का ही उदय होता है ।

जब तक प्रमाद दशा है, तभी तक निद्रा आदि की संभावना रहती है, अतः अप्रमत्त गुणस्थानक में प्रमाद के अभाव से निद्रा निद्रा, प्रचला-प्रचला और थीणद्धि निद्रा का उदय विच्छेद हो जाता है ।

आहारक लब्धि धारी मुनि अपनी आहारक लब्धि का प्रयोग प्रमाद दशा में ही करते हैं, अतः अप्रमत्त गुणस्थानक में आहारक द्विक का भी उदय विच्छेद हो जाता है । इस प्रकार 5 प्रकृतियों का उदय विच्छेद होने से अप्रमत्त गुणस्थानक में 76 प्रकृतियों का उदय होता है ।

(8) अपूर्वकरण गुणस्थानक (9) अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक (10) सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक एवं (11) उपशांत मोह गुणस्थानक

सम्मत्तं तिमसंघयण-तियगच्छेओ बिसत्तरि अपुव्वे ।
हासाइ छक्क-अंतो, छसट्ठि अनियट्टि वेअतिगं ।।18।।
संजलणतिगं छ छेओ, सट्ठि सुहुमंमि तुरिअलोभंतो ।
उवसंतगुणे गुणसट्ठि, रिसह नाराय दुग अंतो ।।19।।

शब्दार्थ :-

सम्मत्तं=सम्यक्त्व मोहनीय	**संजलण तिगं=**संज्वलन त्रिक
तिम संघयण=अंतिम संघयण	**छ छेओ=**छह का छेद
तियग=तीन	**सट्ठि=**साठ (60)
च्छेओ=छेद	**सुहुमंमि=**सूक्ष्म संपराय में
बिसत्तरि=बहत्तर (72)	**तुरिअ=**चौथे
अपुव्वे=अपूर्व गुणस्थानक में	**लोभंतो=**लोभ का अंत
हासाइ=हास्यादि	**उवसंतगुणे=**उपशांत गुणस्थानक में
छक्कअंतो=छह का अंत	**गुणसट्ठि=**उनसाठ (59)
छसट्ठि=छासठ (66)	**रिसह नाराय=**ऋषभ नाराच
अनियट्टि=अनिवृत्ति गुणस्थानक में	**दुग अंतो=**दो का अंत
वेअतिगं=वेद त्रिक	

भावार्थ :- अप्रमत्त गुणस्थानक में सम्यक्त्व मोहनीय और अंतिम तीन संघयण का उदय विच्छेद होता है । अतः अपूर्वकरण गुणस्थानक में 72 कर्मप्रकृति का उदय होता है ।

वहाँ हास्यादि छह का विच्छेद होने से अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक में 66 कर्म प्रकृति का उदय होता है । वहाँ वेदत्रिक और संज्वलन त्रिक के उदय का विच्छेद होता है, अतः सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक में 60 प्रकृति का उदय होता है, वहाँ चौथे संज्वलन लोभ के उदय का विच्छेद होता है, अतः उपशांत मोह गुणस्थानक में 59 प्रकृति का उदय रहता है । वहाँ ऋषभ नाराच और नाराच इन दो संघयण के उदय का विच्छेद होता है ।

विवेचन :- आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानक में 72 का उदय

अप्रमत्त गुणस्थानक के अंत में (1) सम्यक्त्व मोहनीय, (2) अर्धनाराच, (3) कीलिका और (4) सेवार्त-इन चार प्रकृतिओं का उदय विच्छेद होता है ।

अतः अपूर्वकरण गुणस्थानक में (76-4=)72 प्रकृत्ति का बंध होता है ।

आठवें गुणस्थानक से उपशम श्रेणी और क्षपकश्रेणी का प्रारंभ होता है ।

समकित मोहनीय के उदयवाली आत्मा किसी भी श्रेणी पर आरूढ़ नहीं होती है, अतः 8वें गुणस्थानक में सम्यक्त्व मोहनीय का उदय नहीं होता है ।

अंतिम तीन संघयण अर्थात् अर्धनाराच, कीलिका और सेवार्त संघयणवाली आत्मा भी उपशम या क्षपक श्रेणी पर नहीं चढती है, अतः उन तीन संघयणों का भी उदय होता नहीं है ।

नौवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक में 66 का उदय

अपूर्वकरण गुणस्थानक के अंत में (1) हास्य, (2) रति, (3) शोक, (4) अरति, (5) भय, (6) जुगुप्सा-इन छह प्रकृतियों के उदय का भी अंत आ जाता है, अतः नौवें गुणस्थानक में (72-6=)66 प्रकृतियों का उदय होता है ।

हास्य आदि षट्क के परिणाम संक्लेशयुक्त कहलाते हैं, जबकि अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक में परिणाम विशुद्ध होते हैं, अतः वहाँ हास्यषट्क का उदय नहीं होता है ।

दसवें सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक में 60 का उदय

नौवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थानक के अंत में (1) पुरुषवेद, (2) स्त्री वेद, (3) नपुंसक वेद, (4) संज्वलन क्रोध, (5) संज्वलन मान और (6) संज्वलन माया का उदय विच्छेद हो जाने से उपशांतमोह नाम के 10वें गुणस्थानक में (66-6)=60 प्रकृतियों का ही उदय होता है ।

क्षपक श्रेणी पर चढ़ी आत्मा नौवें गुणस्थानक में सूक्ष्म संज्वलन लोभ

को छोड़कर मोहनीय कर्म की सभी प्रकृतियों का क्षय कर देती है और उपशम श्रेणी पर चढ़ी आत्मा सूक्ष्म संज्वलन लोभ को छोड़कर मोहनीय कर्म की सभी प्रकृतियों का उपशमन कर देती है, अतः 10वें गुणस्थानक में वेदत्रिक और संज्वलनत्रिक का उदय भी नहीं होता है ।

11वें उपशांत मोह गुणस्थानक में 59 का उदय

सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक के अंत में सूक्ष्म संज्वलन लोभ का उदय विच्छेद हो जाने से 11वें गुणस्थानक में (60-1=)59 प्रकृतियों का उदय होता है ।

उपशांत मोह के अंत में 2 प्रकृति का उदय विच्छेद

उपशांतमोह के अंत में ऋषभ नाराच और नाराच इन दो संघयणों का उदय विच्छेद हो जाता है, क्योंकि क्षपक श्रेणी पर सिर्फ वज्रऋषभ नाराच संघयणवाली आत्मा ही चढ़ सकती है, अतः इन दो संघयणों के उदय का भी उच्छेद हो जाता है ।

(12) क्षीण मोह गुणस्थानक एवं (13) सयोगी केवली गुणस्थानक

सगवन्न खीण दुचरिमि, निद्द दुगंतो अ चरिमि पणवन्ना ।
नाणंतराय दंसण चउ छेओ सजोगि बायाला ।।20।।

शब्दार्थ :-

सगवन्न=सत्तावन (57)	**पणवन्ना=**पचपन (55)
खीण= क्षीणमोह गुणस्थानक	**नाणंतराय=**ज्ञान-अंतराय
दुचरिमि=द्विचरम समय में	**दंसण=**दशक
निद्द दुग= निद्रा द्विक	**चउ=**चार
अंतो=नाश	**छेओ=**छेद
अ=तथा	**सजोगि=**सयोगी
चरिमि=चरम समय में	**बायाला=**बयालिस (42)

भावार्थ :- क्षीणमोह गुणस्थानक के द्विचरम समय में 57 प्रकृतियों का उदय होता है । निद्रा द्विक का अंत होने पर क्षीणमोह के अंतिम समय में 55 प्रकृतियों का उदय होता है । वहाँ ज्ञानावरणीय व अंतराय की 10 और दर्शनावरणीय की 5 प्रकृतियों के उदय का विच्छेद होता है, तथा तीर्थंकर नाम

कर्म का उदय होता है, अतः सयोगी गुणस्थानक में 42 प्रकृतियों का उदय होता है ।

विवेचन :- बारहवाँ क्षीणमोह गुणस्थानक में 57 का उदय

ग्यारहवे उपशांत मोह गुणस्थानक के अंत में (1) ऋषभ नाराच एवं (2) नाराच-इन दो प्रकृत्तिओं का उदय विच्छेद होने से बारहवे क्षीण मोह गुणस्थानक में (59-2=)55 प्रकृति का उदय होता है ।

क्षीणमोह गुणस्थानक द्विचरम समय में 55 का उदय

क्षीणमोह गुणस्थानक में 57 प्रकृतियाँ उदय में होती है, परंतु उस गुणस्थानक के अंतिम दो समय (द्विचरम समय) बाकी तब निद्रा द्विक (निद्रा, प्रचला) का उच्छेद हो जाता है, अतः क्षीणमोह के अंतिमसमय में (57-2=)55 प्रकृतियों का उदय होता है ।

तेरहवें सयोगी केवली गुणस्थानक में 42 का उदय

क्षीणमोह के अंत में 14 का उदय विच्छेद होता है

क्षीणमोह गुणस्थानक के चरम समय तक 55 प्रकृतियों का उदय होता है, परंतु अंतिम समय के साथ ही ज्ञानावरणीय की 5 प्रकृतियाँ-

(1) मति ज्ञानावरण (2) श्रुत ज्ञानावरण (3) अवधिज्ञानावरण
(4) मनः पर्यवज्ञानावरण (5) केवलज्ञानावरण ।

दर्शनावरणीय की 4 प्रकृतियाँ-

(6) चक्षु दर्शनावरण (7) अचक्षु दर्शनावरण
(8) अवधि दर्शनावरण (9) केवल दर्शनावरण ।

अंतराय कर्म की 5 प्रकृतियाँ

(10) दानांतराय (11) लाभांतराय (12) भोगांतराय
(13) उपभोगांतराय और (14) वीर्यांतराय ।

इस प्रकार (5+4+5=)14 प्रकृतियों का नाश हो जाता है, अतः (55-14=)41 प्रकृतियाँ हुईं ।

इसके साथ ही इसी गुणस्थानक में किसी जीव को तीर्थंकर नाम कर्म का उदय होने से (41+1=)42 प्रकृतियों का उदय होता है ।

(14) अयोगी गुणस्थानक

तित्थुदया उरला थिर, खगइ दुग परित्त तिग छ संठाणा ।
अगुरुलहु वन्नचउ निमिण, तेअ कम्माइसंघयणं ।।21।।
दूसर सुसर साया, साएगयरं च तीसवुच्छेओ ।
बारस अजोगि सुभगाइज्ज, जसन्नयर वेअणिअं ।।22।।

शब्दार्थ :-

तित्थुदया=तीर्थंकर नाम के उदय से
उरला=औदारिक
थिर=स्थिर
खगइ दुग=दो विहायोगति
परित्त तिग=प्रत्येक त्रिक
छ संठाणा=छह संस्थान
अगुरुलहु=अगुरुलघु
वन्नचउ=वर्ण चतुष्क
निमिण=निर्माण
तेअ=तैजस शरीर
कम्माइ=कार्मण शरीर
आइसंघयणं=पहला संघयण
दूसर=दु:स्वर
सुसर=सुस्वर
साया=शाता
साएगयरं=अशाता में से एक
तीसवुच्छेओ=30का उदय विच्छेद
बारस=बारह
अजोगि=अयोगी
सुभगाइज्ज=सौभाग्य-आदेय
जस=यश
अन्नयर=दो में से एक
वेअणिअं=वेदनीय

भावार्थ :- सयोगी गुणस्थानक में तीर्थंकर नाम कर्म का उदय होने से 42 प्रकृति उदय में होती है। सयोगी के अंत में औदारिक द्विक, अस्थिर द्विक, विहायोगति द्विक, प्रत्येक त्रिक, 6 संस्थान, अगुरुलघु चतुष्क, वर्ण चतुष्क, निर्माण, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रथम संघयण, दु:स्वर, सुस्वर शाता-अशाता में से कोई एक वेदनीय। इस प्रकार 30 प्रकृतियों का उदय विच्छेद होता है।

अयोगी गुणस्थानक में 12 प्रकृति का उदय होता है।

वहाँ सौभाग्य, आदेय, यश, शाता-अशाता में से एक वेदनीय, त्रस त्रिक, पंचेन्द्रिय जाति, मनुष्य आयुष्य, मनुष्य गति, जिन नाम तथा उच्चगोत्र इन 12 प्रकृतियों का अयोगी गुणस्थानक के अंतिम समय में उदय विच्छेद होता है।

विवेचनः बारहवें अयोगी गुणस्थानक में 12 का उदय ।

तेरहवें सयोगी गुणस्थानक में 42 कर्म प्रकृतियों का उदय होता है । उस गुणस्थानक के अंत में 30 कर्म प्रकृतियों के उदय का विच्छेद होता है ।

30 का उदय विच्छेद

1. औदारिक शरीर	**2. औदारिक अंगोपांग**	**3. अस्थिर**	**4. अशुभ**
5. शुभ विहायोगति	**6. अशुभ विहायोगति**	**7. प्रत्येक**	**8. स्थिर**
9. शुभ	**10. समचतुरस्त्र**	**11. न्यग्रोध परिमंडल**	
12. सादि	**13. वामन**	**14. कुब्ज**	**15. हुंडक**
16. अगुरुलघु	**17. पराघात**	**18. उपघात**	**19. श्वासोच्छ्वास**
20. वर्ण	**21. गंध**	**22. रस**	**23. स्पर्श**
24. निर्माण	**25. तैजस शरीर**	**26. कार्मण शरीर**	
27. प्रथम संघयण	**28. दुःस्वर**	**29. सुस्वर और**	

30. शाता या अशाता में से कोई एक-इस प्रकार सयोगी के अंत में 30 प्रकृतियों के उदय का विच्छेद हो जाने से अयोगी गुणस्थानक में सिर्फ 12 प्रकृतियों का ही उदय होता है ।

अयोगी गुणस्थानक के अंतिम समय में 12 का उदय विच्छेद

(1) शाता या अशाता	(2) मनुष्य आयुष्य	(3) मनुष्य गति
(4) पंचेन्द्रिय जाति	(5) तीर्थंकर नाम कर्म	(6) त्रस
(7) बादर	(8) पर्याप्त	(9) सुभग
(10) आदेय	(11) यश	(12) उच्च गोत्र ।

14वें गुणस्थानक के अंत में इन बारह प्रकृतियों का भी उदय विच्छेद हो जाने से आत्मा सभी कर्मों से मुक्त बनकर शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त कर लेती है ।

17 उदय यंत्र

क्रम	गुणस्थानक नाम	मूल प्रकृतियाँ	उत्तर प्रकृतियाँ	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय	अनुदय
	सामान्य	8	122	5	9	2	28	4	67	2	5	0
1	मिथ्यात्व	8	117	5	9	2	26	4	64	2	5	5
2	सास्वादन	8	111	5	9	2	25	4	59	2	5	11
3	मिश्र	8	100	5	9	2	22	4	51	2	5	22
4	अविरत सं.दृ	8	104	5	9	2	22	4	55	2	5	18
5	देशविरत	8	87	5	9	2	18	2	44	2	5	35
6	प्रमत्तसंयत	8	81	5	9	2	14	1	44	1	5	41
7	अप्रमत्तसंयत	8	76	5	6	2	14	1	42	1	5	46
8	अपूर्वकरण	8	72	5	6	2	13	1	39	1	5	50
9	अनिवृत्तिकरण	8	66	5	6	2	7	1	39	1	5	56
10	सूक्ष्मसंपराय	8	60	5	6	2	1	1	39	1	5	62
11	उपशांतमोह	7	59	5	6	2	0	1	39	1	5	63
12	क्षीणमोह	7	57/55	5	6/4	2	0	1	37	1	5	65/67
13	सयोगीकेवली	4	42	0	0	2	0	1	38	1	0	80
14	अयोगीकेवली	4	12	0	0	1	0	1	9	1	0	110
15	सिद्धावस्था	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	122

18 गुणस्थानक का उदय विच्छेदादि प्रकृतियाँ

गुण-स्थानक	उदय प्रकृति	उदय विच्छेद प्रकृतियाँ	अनुदय प्रकृतियाँ
सामान्य से	122		
1	117		आहारक 2, मिश्रमोहनीय सम्यक्त्व मो. जिननाम
2	111	सूक्ष्म 3, आतप, मिथ्यात्व मोहनीय	नरकानुपूर्वी
3	100	अनंतानुबंधि 4, जाति 4, स्थावर, **मिश्रमोहनीय का उदय**	आनुपूर्वी 3
4	104	मिश्रमोहनीय, **आनुपूर्वी 4 और सम्यक्त्व मोहनीय का उदय.**	
5	87	अप्रत्याख्यानीय 4, आनुपूर्वी 2, (तिर्यंच, मनु.) वैक्रिय 8, (देव 3, नारक 3, वैक्रिय 2) दुर्भग, अनादेय, अपयश	
6	81	**आहारक 2 का उदय.** प्रत्याख्यानीय 4, तिर्यंचगति, तिर्यंचायुष्य, नीचगोत्र, उद्योत.	
7	76	आहारक 2, थीणद्धि 3,	
8	72	सम्यक्त्व मोहनीय, संघयण अंतिम 3,	
9	66	हास्य 6,	
10	60	वेद 3, संज्वलन 3,	
11	59	संज्वलन लोभ	
12	57 55	संघयण 2, द्विचरम समय में निद्रा 2	
13	42	ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 4, अंतराय 5, **जिननाम का उदय**	
14	12	औदारिक 2, शरीर 2, संघयण 1, संस्थान 6, वर्ण 4, विहायोगति 2, अगुरुलघु 4, निर्माण, प्रत्येक 3, सुस्वर, अस्थिर, अशुभ, दुःस्वर और शाता/अशाता चरम समय में	
सिद्ध अवस्था	0	त्रस 3, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, आदेय, यश, जिननाम, उच्चगोत्र और शाता/अशाता	

19 उदीरणा

तस तिग पणिंदि मणुआउ गइ जिणुच्चंति चरिम समयंतो ।
उदउव्वुदीरणा परम पमत्ताइ सगगुणेसु ।।23।।
एसा पयडितिगुणा वेयणियाहार जुअल थीण तीगं ।
मणुआउ पमत्तंता, अजोगि अणुदीरगो भयवं ।।24।।

शब्दार्थ :-

तसतिग=त्रसत्रिक
पणिंदि=पंचेन्द्रिय
मणुआउ=मनुष्य आयुष्य
गइ=गति
जिण=जिन नाम
उच्चं=उच्च गोत्र
चरिम=अंतिम
समयंतो=समय में नाश
उदउव्वुदीरणा=उदय की तरह उदीरणा
परं=परंतु
अपमत्ताइ=अप्रमत्त आदि
सगगुणेसु=सात गुणस्थानकों में
एसा=यह
पयडि=प्रकृति
तिगुणा=त्रिक न्यून
वेयणिय=वेदनीय
आहार जुअल=आहारक द्विक
थीणतिगं=थीणद्धि त्रिक
मणुआउ=मनुष्य आयुष्य
पमत्तंता=प्रमत्त के अंत में
अजोगि=अयोगी
अणुदीरगो=अनुदीरक
भयवं=भगवान

भावार्थ :- उदय की तरह उदीरणा समझनी चाहिए, परंतु अप्रमत्त आदि सात गुणस्थानकों में उदीरणा, तीन, तीन प्रकृति से न्यून समझनी चाहिए ।

प्रमत्त गुणस्थानक के अंत में दो वेदनीय, आहारक द्विक, थीणद्धि त्रिक और मनुष्य आयुष्य इन आठ प्रकृतियों की उदीरणा का विच्छेद होता है । अयोगी भगवंत उदीरणा रहित होते हैं ।

विवेचन :- विपाकोदयवाली कर्मप्रकृतियों को प्रयत्न विशेष द्वारा उदय में लाकर भोगना, उसे उदीरणा कहते हैं ।

जिस कर्म प्रकृति का विपाकोदय हो, उसी की उदीरणा होती है, परंतु

जिसका प्रदेशोदय हो, उसकी उदीरणा नहीं होती है ।

पहले से छठे गुणस्थानक में उदय और उदीरणा एक समान है, अर्थात् जितने कर्मों का उदय होता है, उतने ही कर्मों की उदीरणा होती है ।

उदा.	उदय	उदीरणा
पहला मिथ्यात्व गुणस्थानक	117	117
दूसरा सास्वादन गुणस्थानक	111	111
तीसरा मिश्र गुणस्थानक	100	100
चौथा अविरत गुणस्थानक	104	104
पाँचवाँ देशविरति गुणस्थानक	87	87
छठा सर्वविरति गुणस्थानक	81	81

अप्रमत्त आदि गुणस्थानकों में उदय-उदीरणा एक समान नहीं होते हैं । वहाँ उदय की अपेक्षा उदीरणा में तीन प्रकृतियाँ कम होती हैं ।

अप्रमत्त गुणस्थानक में 76 का उदय है, परंतु उदीरणा 73 की ही होती है, क्योंकि इस गुणस्थानक में शातावेदनीय, अशातावेदनीय और मनुष्य आयुष्य इन तीन प्रकृतिओं की उदीरणा नहीं होती है ।

आठवें अपूर्वकरण गुणस्थानक में 72 प्रकृतियों का उदय है, परंतु उदीरणा 69 की होती है ।

नौवें गुणस्थानक में 66 का उदय, 63 की उदीरणा ।

दसवें गुणस्थानक में 60 का उदय, 57 की उदीरणा ।

ग्यारहवें गुणस्थानक में 59 का उदय, 56 की उदीरणा ।

बारहवें गुणस्थानक में 57 का उदय, 54 की उदीरणा ।

तेरहवें गुणस्थानक में 42 का उदय, 39 की उदीरणा होती है ।

चौदहवें गुणस्थानक में योग का निरोध हो जाने से वहाँ कर्मों की उदीरणा नहीं होती है ।

20 उदीरणा यंत्र

क्रम	गुणस्थानक नाम	मूल प्रकृति	उत्तर प्रकृति	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय	अनुदीरणा
	सामान्य	8	122	5	9	2	28	4	67	2	5	–
1	मिथ्यात्व	8	117	5	9	2	26	4	64	2	5	5
2	सास्वादन	8	111	5	9	2	25	4	59	2	5	11
3	मिश्र	8	100	5	9	2	22	4	51	2	5	22
4	अविरत स.दृ.	8	104	5	9	2	22	4	55	2	5	18
5	देशविरत	8	87	5	9	2	18	2	44	2	5	35
6	प्रमत्तसंयत	8	81	5	9	2	14	1	44	1	5	41
7	अप्रमत्तसंयत	6	73	5	6	0	14	0	42	1	5	49
8	अपूर्वकरण	6	69	5	6	0	13	0	39	1	5	53
9	अनिवृत्तिकरण	6	63	5	6	0	7	0	39	1	5	59
10	सूक्ष्मसंपराय	6	57	5	6	0	1	0	39	1	5	65
11	उपशांतमोह	5	56	5	6	0	0	0	39	1	5	66
12	क्षीणमोह	5	54/52	5	6/4	0	0	0	37	1	5	68/70
13	सयोगीकेवली	2	39	0	0	0	0	0	38	1	0	83
14	अयोगीकेवली	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	122

21 गुणस्थानक उदीरणा विच्छेदादि प्रकृतियाँ

गुण-स्थानक	उदीरणा प्रकृति	उदीरणा विच्छेद प्रकृतियाँ	अनुदीरण प्रकृतियाँ
सामान्य से	122		
1	117		आहारक 2, मिश्रमोहनीय सम्यक्त्व मो: जिननाम
2	111	सूक्ष्म 3, आतप, मिथ्यात्व मोहनीय	नरकानुपूर्वी
3	100	अनंतानुबंधि 4, जाति 4, स्थावर, मिश्रमोहनीय से उदय	आनुपूर्वी 3
4	104	मिश्रमोहनीय आनुपूर्वी 4 और सम्यक्त्व **मोहनीय की उदीरणा**	
5	87	अप्रत्याख्यानीय 4, आनुपूर्वी 2, (तिर्यंच, मनु.) वैक्रिय 8, दौर्भाग्य, अनादेय, अपयश.	
6	81	प्रत्याख्यानीय 4, तिर्यंचगति, तिर्यंचायु:, नीचगोत्र उद्योत **आहारक 2 की उदीरणा**	
7	73	आहारक 2, थीणद्धि 3, **वेदनीय 2, मनुष्यायुष्य**	
8	69	सम्यक्त्व मोहनीय, संघयण अंतिम 3,	
9	63	हास्य 6,	
10	57	वेद 3, संज्वलन 3	
11	56	संज्वलन लोभ	
12	54 52	संघयण 2, निद्रा 2, द्विचरम समय में	
13	39	ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 4, अंतराय 5, **जिननाम की उदीरणा**	
14	0	उच्चगोत्र, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, शरीर 2, औदारिक अंगोपांग, संघयण 1 संस्थान 6, वर्णादि 4, विहायोगति 2, अगुरुलघु 4, निर्माण, जिननाम, त्रस 10, अस्थिर, अशुभ, दु:स्वर.	

22 सत्ता-विधान

1 से 11 गुणस्थानक की संभव सत्ता
1 से 7 गुणस्थानक की सद्भाव सत्ता

सत्ता कम्माण ठिइ, बंधाइ लद्ध अत्तलाभाणं ।
संते अडयालसयं, जा उवसमु विजिणु बिय तइए ।।25।।

शब्दार्थ :-

सत्ता=सत्ता	**अडयाल सयं=**एक सो अडतालीस (148)
कम्माण ठिइ=कर्म की स्थिति	**जा=**यावत्
बंधाइ=बंध आदि	**उवसमु=**उपशांतमोह
लद्ध=प्राप्त	**विजिणु=**जिन नाम बिना
अत्तलाभाणं=आत्मा को प्राप्त	**बिय=**दूसरे
संते=होने पर	**तइए=**तीसरे में

भावार्थ :- बंध आदि के द्वारा स्व स्वरूप को जिन्होंने प्राप्त किया है ऐसे कर्मों का आत्मा के साथ रहना, उसे सत्ता कहते हैं । उपशांत मोह गुणस्थानक तक सत्ता में 148 कर्म प्रकृति होती है । दूसरे-तीसरे गुणस्थानक में जिननाम की सत्ता नहीं होती है ।

विवेचन :- मिथ्यात्व, अविरति आदि हेतुओं से आत्मा कार्मण वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करती है । आत्मा के साथ जुडने पर वे कर्मरूप बन जाते है, उन कर्मों का आत्मा के साथ लगे रहना, उसी को सत्ता कहते हैं ।

कई बार कर्मबंध हो जाने के बाद भी वे कर्म अन्यरूप में संक्रमित हो जाते हैं, जैसे-शाता रूप में बँधे हुए कर्म अशाता में बदल जाते हैं । कभी अशाता के रूप में बँधे हुए कर्म शाता में बदल जाते हैं ।

तिर्यंच गति के रूप में बँधे कर्म दलिक नरकगति में बदल जाते हैं । इन सब परिवर्तन को संक्रमणकरण कहते हैं । इस प्रकार संक्रमणकरण द्वारा प्राप्त कर्म स्वरूप का भी आत्मा के साथ लगे रहना, उसे भी सत्ता कहते है ।

सामान्य सत्ता में 148 कर्म प्रकृति

ज्ञानावरणीय	दर्शनावरणीय	वेदनीय	मोहनीय	आयुष्य	नाम	गोत्र	अंतराय	कुल
5	9	2	28	4	93	2	5	148

यद्यपि बंध में 120 प्रकृतियाँ गिनी गई हैं, फिर भी सत्ता में 148 गिनी हैं। उसका कारण है- (1) बंध में वर्णादि के मात्र 4 भेद गिने गए है, जबकि सत्ता में वर्ण-गंध-रस और स्पर्श के 20 भेद माने गए हैं। वर्ण के 5, रस के 5 गंध के 2 व स्पर्श के 8 - इस प्रकार बंध की अपेक्षा सत्ता में 16 प्रकृति ज्यादा हैं।

(2) बंध में 5 शरीर नाम कर्म गिने गए हैं, उनमें 5 शरीर बंधन व 5 संघातन का भी समावेश कर दिया गया है, जबकि सत्ता में 5 शरीर, 5 बंधन व 5 संघातन की अलग-अलग विवक्षा करने से 10 प्रकृतियाँ बढ़ जाती हैं।

(3) बंध में मिथ्यात्व मोहनीय की 1 प्रकृति है, परंतु सत्ता में मिथ्यात्व मोहनीय की 3 प्रकृतियाँ हैं- समकित मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय।

इस प्रकार बंध की अपेक्षा सत्ता में 28 प्रकृतियाँ अधिक हैं। (120+28=)148 उनमें मोहनीय की 2 और नाम कर्म की 26 प्रकृतियाँ है।

सत्ता के दो भेद :-

1. संभव सत्ता :- वर्तमान में जिस प्रकृति की सत्ता न होने पर भी भविष्य में उसकी सत्ता की संभावना मानकर जो सत्ता मानी जाती है, उसे संभव सत्ता कहते हैं।

(1) 1 लें मिथ्यात्व गुणस्थानक में 148 की सत्ता :- किसी जीव ने मिथ्यात्व गुणस्थानक में नरक आयु का बंध किया हो, फिर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्तकर तीर्थंकर नाम कर्म का बंध करे-फिर आयुष्य पूर्ण करके सम्यक्त्व का वमनकर नरक में जाए, वहाँ पुनः सम्यक्त्व प्राप्त करे- उस जीव की अपेक्षा से मिथ्यात्व गुणस्थानक में 148 की सत्ता मानी गई है।

(2) 2-3- सास्वादन और मिश्र गुणस्थानक :- इन दो गुणस्थानकों में

147 की संभव सत्ता मानी गई है। क्योंकि जिन नाम कर्म की सत्ता वाला जीव तथास्वभाव से ही दूसरे और तीसरे गुणस्थानक को प्राप्त नहीं करता है।

(3) 4 से 7 अविरत सम्यग्दृष्टि से अप्रमत्त तक 148 की सत्ता :- चौथे से सातवें गुणस्थानक तक 148 की सत्ता होती है, क्योंकि नरकादि चारों आयुष्य की सत्तावाले क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव अप्रमत्त गुणस्थानक तक जा सकते है, परंतु उसके आगे नहीं, अतः उनको 148 की सत्ता होती है।

(4) 8 से 11 गुणस्थानक :- जिस आत्मा ने नरक या तिर्यंच गति के आयुष्य का बंध कर दिया हो, वह आत्मा उपशम श्रेणी पर आरुढ़ नहीं होती है, फिर भी 11वें गुणस्थानक में 148 प्रकृतियों की सत्ता मानी गई है, क्योंकि भले ही 11वें गुणस्थानक पर चढ़ी आत्मा में नरक आयुष्य व तिर्यंच आयुष्य की सद्भाव सत्ता नहीं है, फिर भी वह आत्मा 11वें गुणस्थानक से गिरकर नीचे आने पर तिर्यंच व नरक के आयुष्य का भी बंध कर सकती है, अतः उसकी भी संभव सत्ता वहाँ मानी गई है।

2. सद्भाव सत्ता :- जिस समय जिस कर्म की सत्ता विद्यमान हो, उस कर्म की सत्ता को सद्भाव सत्ता कहते हैं।

(1) मिथ्यात्व गुणस्थानक :- जो जीव अनादि मिथ्यादृष्टि है अर्थात् अभी तक सम्यक्त्व पाया न हो, उनके (1) समकितमोहनीय, (2) मिश्रमोहनीय (3) जिन नाम कर्म और आहारक चतुष्क (4) आहारक शरीर, (5) आहारक अंगोपांग, (6) आहारक बंधन और (7) आहारक संघातन–इन सात प्रकृतियों को छोड़ 141 प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं।

जिन जीवों ने सम्यक्त्व प्राप्त किया हो और वहाँ गिरकर मिथ्यात्व गुणस्थानक में आए हों, उन जीवों को 148 की सत्ता हो सकती है।

2 चौथे से सातवें गुणस्थानक :- उपशम सम्यग्दृष्टि जीव को चौथे से छठे गुणस्थानक में आहारक चतुष्क को छोड़कर 144 प्रकृति सत्ता में होती है तथा सातवें गुणस्थानक में आहारक द्विक (आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग) का बंध होने से सत्ता में 148 कर्म प्रकृति होती है।

क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि को 148 एवं क्षायिक समकिती को दर्शन सप्तक (दर्शनमोहनीय की 3 एवं अनंतानुबंधी 4 कषाय) छोडकर 141 प्रकृति सत्ता में होती हैं।

8वाँ अपूर्वकरण गुणस्थानक

अप्पुव्वाइ चउक्के, अण-तिरि-निरयाउ विणु बियालसयं ।
सम्माइ-चउसु सत्तग-खयंमि-इगचत्त-सयमहवा ।।26।।

शब्दार्थ :-

अप्पुव्वाइ=अपूर्वकरण आदि	**सम्माइ=**सम्यक्त्व आदि
चउक्के=चतुष्क में	**चउसु=**चार में
अण=अनंतानुबंधी	**सत्तग=**सप्तक
तिरि=तिर्यंच	**खयंमि=**क्षय होने पर
निरयाउ=नरक आयुष्य	**इगचत्त-सय=**एक सो इगतालीस (141)
विणु=बिना	**महवा=**अथवा
बियालसयं=एक सो बयालिस (142)	

भावार्थ :- अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानकों में अनंतानुबंधी चतुष्क, तिर्यंच आयु व नरक आयु को छोड़कर 142 प्रकृति सत्ता में होती है, और अविरत सम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानक में दर्शन सप्तक का क्षय होने से 141 प्रकृति सत्ता में होती है ।

विवेचन :- (1) 8वें अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानक में—जो जीव अनंतानुबंधी कषाय चतुष्क की विसंयोजना कर देवायु का बंधकर उपशम श्रेणी पर चढ़ता है, उस जीव को आठवें आदि गुणस्थानकों में 142 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

(2) दर्शन सप्तक का क्षयकर जिन्होंने क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया हो, उन्हें चौथे से सातवें गुणस्थानक में 141 प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं ।

9वे अनिवृत्ति बादर गुणस्थानक का पहला भाग

खवगं तु पप्प चउसुवि, पणयालं निरय तिरि सुराउ विणा ।
सत्तग विणु अडतीसं, जा अनियट्टि पढम भागो ।।27।।

शब्दार्थ :-

खवगं=क्षपक	**चउसुवि=**चारों में
पप्प=प्राप्तकर	**पणयालं=**एक सो पैतालीस (145)

निरय=नरक	**विणु=**बिना
तिरि=तिर्यंच	**अडतीसं=**एक सो अडतीस (138)
सुराउ=देव आयुष्य	**जा=**जो
विणा=बिना	**अनियट्टि=**अनिवृत्ति
सत्तग=सप्तक	**पढम भागो=**प्रथम भाग

भावार्थ :- क्षपक की अपेक्षा अविरत सम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानकों में नरक आयु, तिर्यंच आयु और देवायु को छोड़ 145 प्रकृति सत्ता में होती है। अनिवृत्ति गुणस्थानक के पहले भाग में सप्तक के बिना 138 प्रकृतियाँ होती हैं।

विवेचन :- क्षपक को चौथे से सातवें गुणस्थानक में 145 की सत्ता।

क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होकर कर्मों का क्षय करने वाले जीव क्षपक कहलाते हैं। जिन जीवों ने क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया है, तथा उसी भव में क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाले हैं, उन जीवों को नरक, तिर्यंच व देव भव के आयुष्य की सत्ता नहीं होती है, अतः उन क्षपक जीवों को चौथे से सातवें गुणस्थानक में 148 में से तीन आयुष्य घटाने पर 145 प्रकृतियाँ सत्ता में होती है।

क्षपक को चौथे सी लेकर नौवे के पहले भाग तक 138 की सत्ता

अनंतानुबंधी चतुष्क और दर्शन मोह त्रिक का क्षय कर जिन्होने क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया है, और उसी भव में क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाले हैं, उन जीवों को दर्शन सप्तक और तीन आयुष्य की सत्ता का अभाव होने से 138 प्रकृतियाँ ही सत्ता में होती हैं।

138 प्रकृतियों की सत्ता चौथे गुणस्थानक से लेकर नौवें गुणस्थानक के पहले भाग तक होती है।

9 वें अनिवृत्ति बादर गुणस्थानक के शेष आठ भाग

थावरतिरि निरयायव-दुग थीण तिगेग विगल साहारं।
सोलखओ दुवीस सयं, बियंसि बिय तिय कसायंतो ॥28॥
तइयाइसु चउदस तेर, बार छ पण चउ तिहिय सय कमसो।
नपु इत्थि हासछग पुंस, तुरिअ कोह मय मायखओ ॥29॥

शब्दार्थ :-

थावर=स्थावर	**तेर=**तेरह
तिरि=तिर्यंच	**बार=**बारह
निरयायव=नरक और आतप	**छ=**छ
दुग=द्विक	**पण=**पाँच
थीण=थीणद्धि	**चउ=**चार
तिगेग=त्रिक एक	**तिहिय सय=**एक सो तीन (103)
विगल=विकलेन्द्रिय	**कमसो=**क्रमशः
साहारं=साधारण	**नपु=**नपुंसकवेद
सोलखओ=16 का क्षय	**इत्थि=**स्त्रीवेद
दुवीस सयं=एक सो बाईस (122)	**हास छग=**हास्य षट्क
बियंसि=दूसरे भाग में	**पुंस=**पुरुषवेद
बिय=दूसरे अप्रत्याख्यानीय	**तुरिय=**चौथा संज्वलन
तिय=तीसरे प्रत्याख्यानीय	**कोह=**क्रोध
कसायंतो=कषाय का अंत	**मय=**मद/मान
तइयाइसु=तीसरे आदि में	**माय खओ=**माया का नाश
चउदस=चौदह	

भावार्थ :- स्थावर द्विक, तिर्यंच द्विक, नरक द्विक, आतप द्विक, थीणद्धि त्रिक, एकेन्द्रिय जाति, विकलेन्द्रिय जाति और साधारण- इन 16 प्रकृतियों का क्षय होने से दूसरे भाग में 122 प्रकृति की सत्ता रहती है ।

दूसरे और तीसरे कषाय का अंत होने से तीसरे भाग में 114 प्रकृति की सत्ता रहती हैं ।

नपुंसक वेद का क्षय होने से चौथे भाग में 113 कर्म प्रकृति की सत्ता रहती है ।

स्त्रीवेद का अंत होने से पाँचवें भाग में 112 प्रकृति की सत्ता रहती है ।

हास्य षट्क का अंत होने से छठे भाग में 106 प्रकृति की सत्ता रहती है ।

पुरुष वेद का क्षय होने से सातवें भाग में 105 प्रकृति की सत्ता रहती है ।

संज्वलन क्रोध का क्षय होने से आठवें भाग में 104 प्रकृति की सत्ता रहती है।

संज्वलन मान का क्षय होने से नौवे भाग में 103 प्रकृति की सत्ता रहती है।

फिर संज्वलन माया का क्षय होता है।

विवेचन :- नौवें गुणस्थानक के नौ भाग होते हैं। उन नौ भागों में कुछ-कुछ प्रकृतियों का नाश होता जाता है।

अनिवृत्ति गुणस्थानक के पहले भाग में 138

दर्शन सप्तक और तीन आयुष्य के बिना 138 प्रकृतियों की सत्ता होती है।

दूसरे भाग में 122 – पहले भाग के अंत में

(1) स्थावर, (2) सूक्ष्म, (3) तिर्यंचगति, (4) तिर्यंचानुपूर्वी, (5) नरकगति, (6) नरकानुपूर्वी, (7) आतप, (8) उद्योत, (9) थीणद्धि, (10) निद्रानिद्रा, (11) प्रचला प्रचला, (12) एकेन्द्रिय जाति, (13) द्वीन्द्रिय जाति, (14) त्रीन्द्रिय जाति, (15) चतुरिन्द्रिय जाति और (16) साधारण इन 16 प्रकृतियों का नाश हो जाने से दूसरे भाग में (138-16=)122 कर्म प्रकृतियों की सत्ता रहती है।

तीसरे भाग में 114– दूसरे भाग के अंत में–

(1) अप्रत्याख्यानीय क्रोध, (2) मान, (3) माया, (4) लोभ और (5) प्रत्याख्यानीय क्रोध, (6) मान, (7) माया और (8) लोभ-इन आठ प्रकृतियों का क्षय होने से (122–8=)114 प्रकृतियों की सत्ता रहती है।

चौथे भाग में 113 – अनिवृत्ति गुणस्थानक के तीसरे भाग के अंत में नपुंसक वेद का क्षय होने से (114-1=)113 प्रकृतियों की सत्ता रहती है

पाँचवाँ भाग-112

चौथे भाग के अंत में **स्त्री** वेद का क्षय होने से (113-1)=112 प्रकृतियों की सत्ता रहती है।

छठा भाग-106

नौवें गुणस्थानक के पाँचवें भाग के अंत में (1) हास्य, (2) रति, (3) अरति, (4) भय, (5) शोक, (6) जुगुप्सा–इन छह का क्षय होने से (112-6=)106 प्रकृतियों की सत्ता रहती है।

सातवाँ भाग-105

छठे भाग के अंत में पुरुषवेद का अंत होने से सातवें भाग में (106-1=)105 प्रकृतियों की सत्ता रहती है ।

आठवाँ भाग-104

सातवें भाग के अंत में संज्वलन क्रोध की सत्ता का क्षय होने से (105-1=)104 की सत्ता रहती है ।

नौवाँ भाग- 103

आठवें भाग के अंत में संज्वलन मान की सत्ता का क्षय होने से (104-1=)103 की सत्ता रहती है ।

नौवें गुणस्थानक के नौवें भाग के अंत में संज्वलन माया की सत्ता का क्षय होने से दसवे गुणस्थानक में 102 प्रकृतियों की सत्ता होती है ।

10 वाँ सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक एवं 12 वाँ क्षीण मोह गुणस्थानक

सुहुमि दुसय लोहंतो, खीण दुचरिमेग सओ दुनिद्दखओ ।
नवनवइ चरिम समए, चउ दंसण नाण विग्घंतो ।।30।।

शब्दार्थ :-

सुहुमि=सूक्ष्म संपराय गुण. में	**नव नवइ=**निन्न्यान्वे (99)
दुसय=एक सो दो (102)	**चरिम समए=**अंतिम समय में
लोहंतो=लोभ का अंत	**चउ=**चार
खीण=क्षीण मोह गुण.	**दंसण=**दर्शनावरणीय
दुचरिमेग=द्विचरम समय में	**नाण=**ज्ञानावरणीय
एगसओ=एक सो एक (101)	**विग्घंतो=**अंतराय का अंत
दुनिद्दखओ=दो निद्रा का क्षय	

भावार्थ :- सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक में सत्ता में 102 प्रकृति होती है । वहाँ संज्वलन लोभ का अंत होने से क्षीणमोह गुणस्थानक के द्विचरम समय में 101 प्रकृति सत्ता में रहती है ।

वहाँ निद्रा द्विक का क्षय होने से क्षीणमोह के अंतिम समय में 99 प्रकृति सत्ता में रहती है ।

क्षीणमोह के अंत में चार दर्शनावरणीय, पाँच ज्ञानावरणीय और पाँच अंतराय का क्षय होता है ।

विवेचन :- 10वें सूक्ष्म संपराय गुणस्थानक में 102 प्रकृति की सत्ता

10वें गुणस्थानक के अंत में संज्वलन लोभ का क्षय होने से 12वें गुणस्थानक के द्विचरम समय में 101 प्रकृति सत्ता में रहती है ।

द्विचरम समय के अंत में निद्रा और प्रचला का क्षय होने से 12वें गुणस्थानक के चरम समय में 99 की सत्ता रहती है ।

क्षीण मोह के अंतिम समय में पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पाँच अंतराय- इन 14 प्रकृतियों का क्षय होने से (99-14=)85 प्रकृतियों की सत्ता रहती है ।

13वाँ सयोगी एवं 14वाँ अयोगी गुणस्थानक

पणसीइ सजोगि अजोगि, दुचरिमे देव खगइ गंधदुगं ।
फासट्ठ वन्न रस तणु, बंधण संघाय पण निमिणं ।।31।।
संघयण अथिर संठाण, छक्क अगुरुलहु चउ अपज्जत्तं ।
सायं व असायं वा, परित्तुवंगतिग सुसर-निअं ।।32।।

शब्दार्थ :-

पणसीइ=पच्चासी (85)
सजोगि=सयोगी
अजोगि=अयोगी
दुचरिमे=द्विचरिम
देव=देव
खगइ=विहायोगति
गंधदुगं=गंध द्विक
फासट्ठ=आठ स्पर्श
वन्न=वर्ण
रस=रस
तणु=शरीर
बंधण=बंधन
संघाय=संघातन
पण=पाँच
निमिणं=निर्माण
संघयण=संघयण
अथिर=अस्थिर
संठाण=संस्थान
छक्कं=छह
अगुरुलहुचउ=अगुरुलघु चतुष्क
अपज्जत्तं=अपर्याप्त
सायं=शाता
व=अथवा
असायं=अशाता

वा=अथवा	**सुसर=**सुस्वर
परित्त=प्रत्येक	**निअं=**नीच
उवंगतिग=उपांग त्रिक	

भावार्थ :- सयोगी केवली गुणस्थानक में सत्ता में 85 प्रकृति रहती हैं। अयोगी गुणस्थानक के द्विचरम समय में देव द्विक, विहायोगति द्विक, गंध द्विक, आठ स्पर्श, पाँच वर्ण, पाँच रस, पाँच शरीर, पाँच बंधन, पाँच संघातन, निर्माण, छह संघयण, अस्थिर षट्क, छह संस्थान, अगुरुलघु चतुष्क, अपर्याप्त, शाता अथवा अशाता, प्रत्येक त्रिक, उपांग त्रिक, सुस्वर और नीच गोत्र इन 72 प्रकृतियों का क्षय होता है।

विवेचन :- सयोगी केवली गुणस्थानक एवं अयोगी केवली गुणस्थानक के द्विचरम समय तक 85 प्रकृतियाँ सत्ता में रहती हैं। अयोगी गुणस्थानक के द्विचरम समय के अंत में निम्न प्रकृतियों का क्षय होता है-

1. देवगति	**2. देवानुपूर्वी**	**3. शुभ विहायोगति**
4. अशुभ विहायोगति	**5. सुगंध**	**6. दुर्गंध**
7. गुरु	**8. लघु**	**9. मृदु**
10. कर्कश	**11. शीत**	**12. उष्ण**
13. स्निग्ध	**14. रुक्ष**	**15. कृष्ण**
16. नील	**17. रक्त**	**18. पीत**
19. श्वेत	**20. तिक्त**	**21. कटु**
22. कषाय	**23. अम्ल**	**24. मधुर**
25. औदारिक शरीर	**26. वैक्रिय शरीर**	**27. आहारक शरीर**
28. तैजस शरीर	**29 कार्मण शरीर**	**30. औदारिक बंधन**
31. वैक्रिय बंधन	**32. आहारक बंधन**	**33. तैजस बंधन**
34. कार्मण बंधन	**35. औदारिक संघातन**	**36. वैक्रिय संघातन**
37. आहारक संघातन	**38. तैजस संघातन**	**39. कार्मण संघातन**
40. निर्माण	**41. वज्रऋषभ नाराच**	**42. ऋषभ नाराच**
43. नाराच	**44. अर्ध नाराच**	**45. कीलिका**
46. सेवार्त	**47. अस्थिर**	**48. अशुभ**

49. दुर्भग	50. दु:स्वर	51. अनादेय
52. अपयश	53. समचतुरस्त्र	54. न्यग्रोध परिमंडल
55. सादि	56. वामन	57. कुब्ज
58. हुंडक	59. अगुरुलघु	60. पराघात
61. उपघात	62. श्वासोच्छ्वास	63. अपर्याप्त
64. शाता या अशाता	65. प्रत्येक	66. स्थिर
67. शुभ	68. औदारिक अंगोपांग	69. वैक्रिय अंगोपांग
70. आहारक अंगोपांग	71. सुस्वर	72 नीच गोत्र ।

14 वें अयोगी केवली गुणस्थानक का द्विचरम समय

बिसयरि खओ अ चरिमे, तेरस मणुअ तसतिग जसाइज्जं ।
सुभग-जिणुच्च-पणिंदिय-साया-सायेगयर-छेओ ।।33।।
नर अणुपुव्वि विणा वा, बारस चरिम समयंमि जो खविउं ।
पत्तो सिद्धिं देविंद-वंदियं नमह तं वीरं ।।34।।

शब्दार्थ :-

बिसयरि=बहत्तर (72)
खओ=क्षय
चरिमे=अंतिम समय में
तेरस=तेरह
मणुअ=मनुष्य
तसतिग=त्रस त्रिक
जसाइज्जं=यश आदेय
सुभग=सौभाग्य
जिणुच्च=जिन, उच्चगोत्र
पणिंदिय=पंचेन्द्रिय
साया=शाता
सायेगयर=अशाता में से एक
छेओ=छेद
नर=मनुष्य
अणुपुव्वि=आनुपूर्वी
विणा=बिना
वा=अथवा
बारस=बारह
चरिम समयंमि=चरम समय में
जो=वह
खविउं=खपाकर
पत्तो=प्राप्त
सिद्धिं=मोक्ष
देविंद=देवेन्द्र
वंदियं=वंदित
तं=उन
वीरं=वीर को

भावार्थ :- अयोगी केवली गुणस्थानक के द्विचरम समय में बहत्तर (72) प्रकृतियों का क्षय होता है और अंतिम समय में मनुष्यत्रिक, त्रस त्रिक, यश, आदेय, सुभग, जिन-नाम, उच्च गोत्र, पंचेन्द्रिय, शाता-अशाता में से एक वेदनीय इन तेरह (13) प्रकृतियों का क्षय होता है ।

अथवा मनुष्यानुपूर्वी बिना 12 कर्मप्रकृति का अयोगी गुणस्थानक के अंतिम समय में क्षयकर मोक्षप्राप्त एवं देवेन्द्रों से वंदित महावीर प्रभु को नमस्कार है ।

विवेचन :- अयोगी केवली गुणस्थानक के द्विचरम समय में 72 कर्म प्रकृतियों का नाश होता है और अंतिम समय में

(1) मनुष्य गति (2) मनुष्यानुपूर्वी (3) मनुष्य आयुष्य
(4) त्रस (5) बादर (6) पर्याप्त
(7) पंचेन्द्रिय जाति (8) यश कीर्ति (9) आदेय
(10) सुभग (11) जिन नामकर्म (12) उच्च गोत्र और
(13) शाता-अशाता में से एक वेदनीय- ये तेरह प्रकृतियाँ उदय में रहती हैं । फिर `समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाति' नाम के शुक्ल ध्यान द्वारा सभी कर्मों का क्षयकर आत्मा शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त कर लेती है ।

कुछ आचार्यों का मत है कि मनुष्यानुपूर्वी नाम की कर्म प्रकृति क्षेत्र विपाकी होने से इसका उदय विग्रहगति में होता है । भवस्थजीवों को इसका उदय नहीं होता है, अतः अयोगी केवली गुणस्थानक में यह प्रकृति अनुदयवाली है ।

मनुष्यानुपूर्वी नाम कर्म की सत्ता चौदहवें गुणस्थानक के द्विचरम समय में ही मनुष्यत्रिक में गर्भित मनुष्यगति नाम कर्म प्रकृति में स्तिबुक संक्रम द्वारा संक्रांत होकर नष्ट हो जाती है, अतः चौदहवें गुणस्थानक के अंतिम समय में उसके दलिक नहीं रहते हैं । इस अपेक्षा से चौदहवें गुणस्थानक के अंतिम समय में 12 प्रकृतियाँ ही रहती है । अंतिम समय में उन सबका क्षयकर आत्मा शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त करती है ।

अंत में, ग्रंथ का उपसंहार करते हुए ग्रंथकार महर्षि कहते हैं कि देवेन्द्रों द्वारा अथवा आ. श्री देवेन्द्रसूरि द्वारा वंदित महावीर प्रभु को सभी वंदन करें ।

23 सत्ता यंत्र

क्र.	गुणस्थानक में सत्ता		मूल प्रकृति	उत्तर प्रकृति	उपशमश्रेणी	क्षपकश्रेणी	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय
	सामान्य		8	148			5	9	2	28	4	93	2	5
1	मिथ्यात्व		8	148			5	9	2	28	4	93	2	5
2	सास्वादन		8	147			5	9	2	28	4	92	2	5
3	मिश्र		8	147			5	9	2	28	4	92	2	5
4	अविरत		8	148	148 ,141	145,138	5	9	2	28,24,21	4,1	93	2	5
5	देशविरत		8	148	148 ,141	145,138	5	9	2	28,24,21	4,1	93	2	5
6	प्रमत्तसंयत		8	148	148 ,141	145,138	5	9	2	28,24,21	4,1	93	2	5
7	अप्रमत्तसंयत		8	148	148 ,141	145,138	5	3	2	28,24,21	4,1	93	2	5
8	अपूर्वकरण		8	148,142	142 ,139	138	5	9	2	28,24,21	2,1	93	2	5
9	अनिवृत्तिकरण के 9 भाग होते हैं	1	8	148,142	142 ,139	138	5	9,6	2	21	2,1	93,80	2	5
		2	8		0	122	5	9,6	2	21	2,1	93,80	2	5
		3	8		0	114	5	9,6	2	13	2,1	93,80	2	5
		4	8		0	113	5	9,6	2	12	2,1	93,80	2	5

क्र.	गुणस्थानक में सत्ता	मूल प्रकृति	उत्तर प्रकृति	उपशमश्रेणी	क्षपकश्रेणी	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	अंतराय
	5			0	112	5	9,6	2	11	2,1	93,80	2	5
	6			0	106	5	9,6	2	5	2,1	93,80	2	5
	7			0	105	5	9,6	2	4	2,1	93,80	2	5
	8			0	104	5	9,6	2	3	2,1	93,80	2	5
	9			0	103	5	9,6	2	2	2,1	93,80	2	5
10	सूक्ष्मसंपराय	8	148,142	142,139	102	5	9,6	2	28 ,24 ,21 ,1	2,1	93,80	2	5
11	उपशांतमोह	8	148,142	142,139	101	5	9,6	2	28 ,24 ,21 ,1	2,1	93	2	5
12	क्षीणमोह	7	101,99	0	101।99	5	6,4	2	0	1	80	2	5
13	सयोगीकेवली	4	85	0	85	0	0	2	0	1	80	2	0
14	अयोगीकेवली	4	85।13।12	0	85।13।12	0	0	2,1	0	1	80,9	2,1	0

- तद्भव मोक्षगामी अनन्तानुबंधी विसंयोजक उपशमश्रेणि को करने वाले क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि को 141 की सत्ता मानी जाती है ।

◆ तद्भव मोक्ष नहीं जाने वाले उपशमश्रेणि वाले क्षायिक सम्यग्दृष्टि की मानी जाती है ।

❑ नौवें गुणस्थानक में नौ भागों में मोहनीय के 26-24-21अंक सहित समझना चाहिये ।

24 गुणस्थानक में सत्ताविच्छेदादि प्रकृतियाँ

गुण-स्थान	सत्ता से रहनेवाली प्रकृति	सत्ताविच्छेद प्रकृति
सामान्य से	148	
1	148	
2	147	जिननाम बिना
3	147	जिननाम बिना
4	148	नरकादि चारों आयुष्य की सत्तावाले क्षायोपशमिक सम्यक्त की अपेक्षा से, अथवा उपशम श्रेणी पर चढते जीव को 2 आयुष्य की संभव सत्ता की अपेक्षा से ।
	145	तद्भव मुक्तिगामी क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि क्षपकश्रेणी चढने की तैयारी करनेवाले को 3 आयुष्य बिना ।
	142	अनंतानुबंधी विसंयोजक उपशमश्रेणी चढनेवाला क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि ने आयुष्य बांधा हो तो, 4 अनंतानुबंधी और 2 आयु. के बिना
	141	तद्भव मोक्षगामी अनंतानुबंधी विसंयोजक उपशमश्रेणी चढनेवाला क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि को 4 अनंतानुबंधी और 3 आयु. के बिना
	138	क्षायिक सम्यग्दृष्टि से क्षपकश्रेणी पर चढनेवाला 7 दर्शन सप्तक और 3 आयुष्य के बिना ।
5 6 7	148 145 142 141 138	उपर के अनुसार
8	148 142 139 138	उपर के अनुसार 7 दर्शन सप्तक और 2 आयुष्य के बिना 7 दर्शन सप्तक और 2 आयुष्य के बिना
9/1	148 142 139 138	उपर के अनुसार
9/2	122	स्थावर 2, तिर्यंच 2, नरक 2, आतप 2, थीणद्धि 3, जाति 4, साधारण बिना
9/3	114	अप्रत्याख्यानीय 4, प्रत्याख्यानीय 4, बिना

गुणस्थानक से सत्ताविच्छेदादि प्रकृतियाँ

गुण-स्थान	सत्ता से रहनेवाली	सत्ताविच्छेद प्रकृति
9/4	113	नपुंसक वेद बिना
9/5	112	स्त्री वेद बिना
9/6	106	हास्य-6 वेद बिना
9/7	105	पुरुषवेद बिना
9/8	104	संज्वलन क्रोध बिना
9/9	103	संज्वलन मान बिना
10	102	संज्वलन माया बिना
	148 142 139	उपर के अनुसार
11	148 142 139	उपर के अनुसार
12	101	संज्वलन लोभ बिना
	99	निद्रा 2 बिना
13	85	ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 4, अंतराय 5 बिना
14	85	उपर के अनुसार
	13	देव 2, विहायोगति 2, वर्णादि 20, शरीर 5, अंगोपांग 3, बंधन 5, बिना
	12	संघातन 5, मनुष्यानुपूर्वी, संघयण 6, संस्थान 6, प्रत्येकनी 5, अस्थिर 6, अपर्याप्ता, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुस्वर नीचगोत्र, शाता/अशाता (द्विचरम समय)
सिद्ध-अवस्था	0	मनुष्यगति, मनुष्यायुष्य, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस 3, सुभग, आदेय, यश, जिननाम, उच्चगोत्र, शाता/अशाता (अंतिम समय) (मतांतरे-मनुष्यापूर्वी)

25 गुणस्थानक-बंधादि विषयक यंत्र

आठ कर्मों की 148 प्रकृतियों का बन्ध, उदय, उदीरणा और सत्ता किस-किस गुणस्थानक तक होती है ।

क्रम	उत्तर प्रकृतियों की संख्या का क्रम	मूल कर्म की उत्तर प्रकृतियों के नाम	किस गुणस्थानक तक बंध	किस गुणस्थानक तक उदय	किस गुणस्थानक तक उदीरणा	किस गुणस्थानक तक सत्ता
1	2	3	4	5	6	7
		ज्ञानावरण 5				
1	1	मति ज्ञानावरण	10	12	12	12
2	2	श्रुत ज्ञानावरण	10	12	12	12
3	3	अवधि ज्ञानावरण	10	12	12	12
4	4	मनः पर्याय ज्ञानावरण	10	12	12	12
5	5	केवल ज्ञानावरण	10	12	12	12
		दर्शनावरण 9				
6	1	चक्षुदर्शनावरण	10	12	12	12
7	2	अचक्षुदर्शनावरण	10	12	12	12
8	3	अवधि दर्शनावरण	10	12	12	12
9	4	केवल दर्शनावरण	10	12	12	12
10	5	निद्रा	$8\frac{1}{7}$	12वें का द्विचरम समय	चरमावलिका न्यून-12वां	12वें का द्विचरम समय

1	2	3	4बंध	5उदय	6उदीरणा	7सत्ता
11	6	निद्रा-निद्रा	2	6	6	$9\frac{1}{9}$
12	7	प्रचला	$8\frac{1}{7}$	12 वें का द्विचरम समय	चरमावलिका न्यून 12 वां	12 वें द्विचरम समय
13	8	प्रचला-प्रचला	2	6	6	$9\frac{1}{9}$
14	9	स्त्यानर्द्धि	2	6	6	$9\frac{1}{9}$
		वेदनीय—2				
15	1	सातावेदनीय	13	14	6	14^1
16	2	असातावेदनीय	6	14	6	14^1
		मोहनीय—28				
17	1	सम्यक्त्व मोहनीय	बंध	4 से 7	4 से 7	7
18	2	मिश्र मोहनीय	नहीं	3	3	7
19	3	मिथ्यात्व मोहनीय	1	1	1	7^2
20	4	अनन्तानुबंधी क्रोध	2	2	2	7^2
21	5	अनन्तानुबंधी मान	2	2	2	7^2
22	6	अनन्तानुबंधी माया	2	2	2	7^2
23	7	अनन्तानुबंधी लोभ	2	2	2	7
24	8	अप्रत्या० क्रोध	4	4	4	$9\frac{2}{9}$
25	9	अप्रत्या० मान	4	4	4	$9\frac{2}{9}$
26	10	अप्रत्या० माया	4	4	4	$9\frac{2}{9}$
27	11	अप्रत्या० लोभ	4	4	4	$9\frac{2}{9}$
28	12	प्रत्या० क्रोध	5	5	5	$9\frac{2}{9}$

टिपण्णी :– 1. 14 वें के द्विचरम समय या 14 तक । 2. उपशामक को 1 से 11 तक ।

1	2	3	4 बंध	5उदय	6उदीरणा	7सत्ता
29	13	प्रत्या0 मान	5	5	5	$9\frac{2}{9}$
30	14	प्रत्या0 माया	5	5	5	$9\frac{2}{9}$
31	15	प्रत्या0 लोभ	5	5	5	$9\frac{2}{9}$
32	16	संज्वलन क्रोध	$9\frac{2}{5}$	9	9	$9\frac{7}{9}$
33	17	संज्वलन मान	$9\frac{3}{5}$	9	9	$9\frac{8}{9}$
34	18	संज्वलन माया	$9\frac{4}{5}$	9	9	$9\frac{9}{9}$
35	19	संज्वलन लोभ	9	10	10	10
36	20	हास्य नोकषाय	8	8	8	$9\frac{5}{9}$
37	21	रति नोकषाय	8	8	8	$9\frac{5}{9}$
38	22	अरति नोकषाय	6	8	8	$9\frac{5}{9}$
39	23	शोक नोकषाय	6	8	8	$9\frac{5}{9}$
40	24	भय नोकषाय	8	8	8	$9\frac{5}{9}$
41	25	जुगुप्सा नोकषाय	8	8	8	$9\frac{5}{9}$
42	26	पुरुषवेद नोकषाय	$9\frac{1}{5}$	9	9	$9\frac{6}{9}$
43	27	स्त्रीवेद नोकषाय	2	9	9	$9\frac{4}{9}$
44	28	नपुंसकवेद	1	9	9	$9\frac{3}{9}$
		आयु कर्म–4				
45	1	देवायु	1से7◆	4	4	11
46	2	मनुष्यायु	4	14	6	14
47	3	तिर्यंचायु	2	5	5	7
48	4	नरकायु	1	4	4	7

◆ तीसरे गुणस्थानक में किसी आयु का बन्ध होता नहीं है, इसलिए तीसरे गुणस्थान के सिवाय ।

नाम कर्म की 93-103

1	2	3	4बंध	5उदय	6उदीरणा	7सत्ता
49	1	मनुष्यगति	4	14	13	14
50	2	तिर्यंचगति	2	5	5	$9\frac{1}{9}$
51	3	देवगति	$8\frac{6}{9}$	4	4	14
52	4	नरकगति	1	4	4	$9\frac{1}{9}$
53	5	एकेन्द्रियजाति◆	1	2	2	$9\frac{1}{9}$
54	6	द्वीन्द्रियजाति	1	2	2	$9\frac{1}{9}$
55	7	त्रीन्द्रियजाति	1	2	2	$9\frac{1}{9}$
56	8	चतुरन्द्रियजाति	1	2	2	$9\frac{1}{9}$
57	9	पंचेन्द्रियजाति	$8\frac{6}{9}$	14	13	14
58	10	औदारिक शरीर	4	13	13	14 द्विचरम समय
59	11	वैक्रिय शरीर	$8\frac{6}{9}$	4	4	14 द्विचरम समय
60	12	आहारक शरीर	$8\frac{6}{9}$	छठवां	छठवां	14 द्विचरम समय
61	13	तैजस शरीर	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
62	14	कार्मण शरीर	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
63	15	औदारिक अंगोपांग	4	13	13	14 द्विचरम समय
64	16	वैक्रिय अंगोपांग	$8\frac{6}{9}$	4	4	14 द्विचरम समय
65	17	आहारक अंगोपांग	$8\frac{6}{9}$	छठवां	छठवां	14 द्विचरम समय
66	18	औदारिक बंधन	—	—	—	14 द्विचरम समय
67	19	वैक्रिय बंधन	—	—	—	14 द्विचरम समय

◆ एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को मात्र पहला और दूसरा गुणस्थान–ये दो ही गुणस्थान होते हैं ।

			बंध	उदय	उदीरणा	सत्ता
68	20	आहारक बंधन	–	–	–	14 द्विचरम समय
69	21	तैजस बंधन	–	–	–	14 द्विचरम समय
70	22	कार्मण बंधन	–	–	–	14 द्विचरम समय
71	23	औदारिक संघातन नाम	–	–	–	14 द्विचरम समय
72	24	वैक्रिय संघातन	–	–	–	14 द्विचरम समय
73	25	आहारक संघातन	–	–	–	14 द्विचरम समय
74	26	तैजस संघातन	–	–	–	14 द्विचरम समय
75	27	कार्मण संघातन	–	–	–	14 द्विचरम समय
76	28	वज्रऋषभ नाराच सं.	4	13	13	14 द्विचरम समय
77	29	ऋषभ नाराच सं0	2	11	11	14 द्विचरम समय
78	30	नाराच संघयन	2	11	11	14 द्विचरम समय
79	31	अर्धनाराच संघयन	2	7	7	14 द्विचरम समय
80	32	कीलिका	2	7	7	14 द्विचरम समय
81	33	सेवार्त	1	7	7	14 द्विचरम समय
82	34	सम चतुरस्त्र संस्थान	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
83	35	न्यग्रोध संस्थान	2	13	13	14 द्विचरम समय
84	36	सादि संस्थान	2	13	13	14 द्विचरम समय
85	37	वामन संस्थान	2	13	13	14 द्विचरम समय
86	38	कुब्ज संस्थान	2	13	13	14 द्विचरम समय
87	39	हुण्डक संस्थान	1	13	13	14 द्विचरम समय
88	40	कृष्ण वर्ण नाम	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
89	41	नील वर्ण	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय

1	2	3	4बंध	5उदय	6उदीरणा	7सत्ता
90	42	लोहित वर्ण	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
91	43	हारिद्र वर्ण	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
92	44	श्वेत वर्ण	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
93	45	सुरभि गंध	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
94	46	दुरभि गंध	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
95	47	तिक्करस रस	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
96	48	कटुक रस	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
97	49	कषाय रस	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
98	50	आम्ल रस	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
99	51	मधुर रस	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
100	52	कर्कश स्पर्श	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
101	53	मृदु स्पर्श	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
102	54	गुरु स्पर्श	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
103	55	लघु स्पर्श	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
104	56	शीत स्पर्श	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
105	57	उष्ण स्पर्श	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
106	58	स्निग्ध स्पर्श	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
107	59	रुक्ष स्पर्श	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
108	60	नरकानुपूर्वी	1	1-4	1-4	$9\frac{1}{9}$
109	61	तिर्यंचानुपूर्वी	2	1-2-4	1-2-4	$9\frac{1}{9}$
110	62	मनुष्यानुपूर्वी	4	1-2-4	1-2-4	14 द्विचरम समय
111	63	देवानुपूर्वी	$8\frac{6}{9}$	1-2-4	1-2-4	14 द्विचरम समय
112	64	शुभविहायोगति	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय

1	2	3	4	5	6	7
113	65	अशुभविहायोगति	2	13	13	14 द्विचरम समय
114	66	पराघातनामकर्म	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
115	67	उच्छ्वास	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
116	68	आतप	1	1	1	$9\frac{1}{9}$
117	69	उद्योतनामकर्म	2	5	5	$9\frac{1}{9}$
118	70	अगुरुलघु "	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
119	71	तीर्थकर "	4 से $8\frac{6}{9}$	13-14	13	14 द्विचरम समय
120	72	निर्माण "	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
121	73	उपघात "	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
122	74	त्रस नाम "	$8\frac{6}{9}$	14	13	14
123	75	बादर "	$8\frac{6}{9}$	14	13	14
124	76	पर्याप्त "	$8\frac{6}{9}$	14	13	14
125	77	प्रत्येक "	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
126	78	स्थिर "	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
127	79	शुभ "	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
128	80	सौभाग्य "	$8\frac{6}{9}$	14	13	14
129	81	सुस्वर "	$8\frac{6}{9}$	13	13	14 द्विचरम समय
130	82	आदेय नाम कर्म	$8\frac{6}{9}$	14	13	14
131	83	यशःकीर्ति,,	10	14	13	14
132	84	स्थावर नामकर्म	1	2	2	$9\frac{1}{9}$
133	85	सूक्ष्म नामकर्म	1	1	1	$9\frac{1}{9}$
134	86	अपर्याप्त नामकर्म	1	1	1	14
135	87	साधारण नामकर्म	1	1	1	$9\frac{1}{9}$

1	2	3	4	5	6	7
136	88	अस्थिर नाम कर्म	6	13	13	14 द्विचरम समय
137	89	अशुभ नाम कर्म	6	13	13	14 द्विचरम समय
138	90	दौर्भाग्य नाम कर्म	2	4	4	14 द्विचरम समय
139	91	दुःस्वर नाम कर्म	2	13	13	14 द्विचरम समय
140	92	अनादेय नाम कर्म	2	4	4	14 द्विचरम समय
141	93	अयशःकीर्ति नाम कर्म	6	4	4	14 द्विचरम समय
		गोत्रकर्म-2				
142	1	उच्च गोत्र	10	14	13	14 द्विचरम समय
143	2	नीचगोत्र	2	5	5	14 द्विचरम समय
		अन्तराय कर्म-5				
144	1	दानान्तराय	10	12	12	12
145	2	लाभान्तराय	10	12	12	12
146	3	भोगान्तराय	10	12	12	12
147	4	उपभोगान्तराय	10	12	12	12
148	5	वीर्यान्तराय	10	12	12	12

नोट :

(1) इस यंत्र में उपशम और क्षमक इस प्रकार दो श्रेणियों की विवक्षा ली गई है ।

(2) नाम कर्म की जिन प्रकृतियों की सत्ता चौदह गुणस्थान तक कही है, उनमें से मनुष्य गति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर पर्याप्त, सौभाग्य, आदेय, यशः कीर्ति, तीर्थंकर नाम कर्म के सिवाय 71 प्रकृतियों की सत्ता चौदहवें गुणस्थान के द्विचरम समय तक होती है ।

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर,
मरुधररत्न, पू.आ. श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा
मुख्यतया हिन्दी भाषा में आलेखित
243 पुस्तकों में से उपलब्ध एवं अवश्य
पठनीय साहित्य-सूची

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	चिंतन का अमृत-कुंभ	80/-	40.	संस्मरण	50/-
2.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-1)	100/-	41.	भव आलोचना	10/-
3.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-2)	100/-	42.	बीसवी सदी के महान योगी	300/-
4.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-3)	125/-	43.	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-
5.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-4)	135/-	44.	आध्यात्मिक पत्र	60/-
6.	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	150/-	45.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
7.	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	400/-	46.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
8.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-	47.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
9.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-	48.	श्री नमस्कार महामंत्र	180/-
10.	विविध-तपमाला	100/-	49.	महामंत्र की अनुप्रेक्षाएँ	150/-
11.	विवेकी बनो	90/-	50.	नमस्कार मीमांसा	150/-
12.	प्रवचन-वर्षा	60/-	51.	परमेष्ठि-नमस्कार	180/-
13.	आओ श्रावक बनें !	25/-	52.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	200/-
14.	व्यसन-मुक्ति	100/-	53.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-1	200/-
15.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-	54.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-2	200/-
16.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (41 से 57)	275/-	55.	सज्झायों का स्वाध्याय	100/-
17.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (58 से 80)	280/-	56.	वैराग्य-वाणी	140/-
18.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-	57.	सम्यग्दर्शन का सूर्योदय	160/-
19.	समाधि मृत्यु	80/-	58.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	200/-
20.	Pearls of Preaching	60/-	59.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	240/-
21.	New Message for a New Day	600/-	60.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-
22.	Panch Pratikraman Sootra	100/-	61.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें !	150/-
23.	अमृत रस का प्याला	300/-	62.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-
24.	ध्यान साधना	40/-	63.	मन के जीते जीत है	80/-
25.	आग और पानी-भाग-1-2	115/-	64.	प्रातः स्मरणीय महापुरुष भाग-1	300/-
26.	शांत सुधारस-हिन्दी -भाग-1-2	140/-	65.	प्रातः स्मरणीय महापुरुष भाग-2	300/-
27.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-	66.	प्रातः स्मरणीय महासतियाँ भाग-1	280/-
28.	प्रेरक-प्रवचन	80/-	67.	प्रातः स्मरणीय महासतियाँ भाग-2	300/-
29.	जीव विचार विवेचन	100/-	68.	इन्द्रिय पराजय शतक	150/-
30.	नवतत्त्व विवेचन	110/-	69.	संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	160/-
31.	दंडक सूत्र विवेचन	90/-	70.	वैराग्य-शतक	140/-
32.	लघु संग्रहणी	140/-	71.	आनन्दघन चौबीसी विवेचन	200/-
33.	तीन भाष्य (हिन्दी विवेचन)	150/-	72.	धर्म-बीज	140/-
34.	कर्मग्रन्थ (भाग-1)	160/-	73.	45 आगम परिचय	200/-
35.	दूसरा कर्मग्रन्थ	110/-	74.	चौथा कर्मग्रन्थ	140/-
36.	गणधर-संवाद	80/-	75.	पाँचवाँ कर्मग्रन्थ	160/-
37.	आओ ! उपधान पौषध करें !	55/-	76.	नित्य देववंदन	निशुल्क
38.	मोक्ष मार्ग के कदम	120/-	77.	श्री भद्रंकर प्रश्नोत्तरी	170/-
39.	विविध देववंदन	100/-	78.	अध्यात्मयोगी से प्रश्नोत्तर	160/-
			79.	तीसरा कर्मग्रन्थ	90/-

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दिव्य सन्देश प्रकाशन C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. M. 8484848451 (only whatsapp)

Kamal PRINTER'S M. 9820530299